सताशरामाण सद्गुरु कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

वर्ष 49

अप्रैल-मई-जून
2020

अंक 4

Scanned with CamScanner

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—महोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
तेरा जन एकाध है कोई	सद्गुरु कबीर	1
मन रे कर ले साहेब से प्रीत	सद्गुरु कबीर	1
है प्रीत जहाँ की रीत सदा	बरसाइत दास महंत	12
निजस्वरूप में लौट आना है	जितेन्द्र दास	42

स्तंभ
पारख प्रकाश / 2 — व्यवहार वीथी / 15 — परमार्थ पथ / 27
बीजक चिंतन / 40

लेख		
साधना के लिए समय, स्थान तथा परिवेश	श्री सीताराम गुप्ता	7
धर्म वर्तमान का	विवेकदास	13
मानुष तेरा गुण बड़ा	श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी	21
साक्षी की सजगता	श्री ललितप्रभ जी महाराज	29
चलिए अपनी बाट	धर्मेन्द्र दास	36
यह मन तो निर्मल भया		43
कहानी		
सच्चा सौन्दर्य	श्री लखन प्रतापगढ़ी	17

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, प्रयागराज के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है–

27 मई से 31 मई , 2020 : श्री कबीर पारख आश्रम, ग्रा.पो.–सणिया हेमाद, सूरत, गुजरात
सम्पर्क : 09427153838, 09428868484

20 जुलाई से 26 जुलाई , 2020 : श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़
सम्पर्क : 08827605799, 08720893818

14 सितंबर से 20 सितंबर, 2020 : कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, प्रयागराज
सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवें। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।

Scanned with CamScanner

कबीर संस्थान प्रकाशन

सद्गुरु श्री कबीर साहेब कृत
बीजक मूल (छोटा)
बीजक मूल (बड़ा)
कबीर भजनावली (भाग-1)
कबीर भजनावली (भाग-2)
कबीर साखी

श्री निर्मल साहेब कृत
न्यायनामा

सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब कृत
विवेक प्रकाश मूल
बोधसार मूल
रहनि प्रबोधिनी मूल

श्री निर्बंध साहेब कृत
भजन प्रवेशिका

सद्गुरु श्री विशाल साहेब कृत
विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब कृत
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या : प्रथम खण्ड
बीजक व्याख्या : द्वितीय खण्ड
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर : जीवन और दर्शन
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल और मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर सन्देश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
कबीर का पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रंथी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरुपारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं ? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योगदर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्ष शास्त्र
कल्याणपथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बूंद बूंद अमृत
सब सुख तेरे पास
बसै आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक को
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वेन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
शाश्वत जीवन
सहज समाधि
ज्ञान चौंतीसा
सपने सोया मानवा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
आदेश प्रभा
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
मैं कौन हूं?
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
श्री कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
श्री राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा (सटीक)
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊंची घाटी राम की
शंकराचार्य क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान (सटीक)
विष्णु और वैष्णव कौन?
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर
लाओत्ज़े क्या कहते हैं?
राम नाम भजु लागू तीर
आत्मसंयम ही राम भजन है
आत्मधन की परख
वैराग्य त्रिवेणी
अष्टावक्र गीता
सुख सागर भीतर है
मन की पीड़ा से मुक्ति
अमृत कहाँ है?
तेरा साहेब है घट भीतर
महाभारत मीमांसा
धनी धर्म साहेब के अमृत उपदेश

मराठी अनुवाद
बीजक टीका

ENGLISH TRANSLATION
Kabir Bijak (Commentary)
Eternal Life
Art of Human Behaviour
Who am I?
What is Life?
Kabir Amritvani
The Bijak of Kabir (In Verses)
Kabir Bijak
(Elucidation Sakhi Chapter)
Saint Kabir and his Teachings
Life and Philosophy of Kabir
The Path of Salvation

गुजराती अनुवाद
बीजक मूल
बीजक व्याख्या : भाग-1
बीजक व्याख्या : भाग-2
कबीर अमृतवाणी
अढ़ी अक्षर प्रेम ना
व्यवहार नी कला
गुरु पारख बोध
स्त्री बाल शिक्षा
शाश्वत जीवन
ध्यान शुं छे?
हूं कोण छूं?
धर्म ने डुबारनार कोण?
जीवन शुं छे?
ईश्वर शुं छे?
कबीर सन्देश
श्री कृष्ण अने गीता
कबीर नो सांचो प्रेम
गुरुवंदना
संत कबीर अने अेमना उपदेश
कबीर : जीवन अने दर्शन

संत श्री धर्मेन्द्र साहेब कृत
कबीर के ज्वलंत रूप
सार सार को गहि रहे
सद्गुरु कबीर और पारख सिद्धांत
पूजिय विप्र शील गुण हीना
सबकी मांगे खैर
सुखी जीवन की कला
बूंद बूंद से घट भरे
सांचा शब्द कबीर का
सुखी जीवन का रहस्य
कबीर बीजक के रत्न

गुजराती अनुवाद
सुखी जीवन नी कला
सद्गुरु कबीर अने पारख सिद्धांत

संत श्री अशोक साहेब कृत
पानी में मीन पियासी
धनी कौन?
बोध कथाएं
ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया

श्री भावसिंह हिरवानी कृत
कबीर (नाटक)
प्रेरक कहानियां
काया कल्प
समर्पण
बाल कहानियां
ना घर तेरा ना घर मेरा
जीवन का सच
कर्मयोगी कबीर (उपन्यास)

कबीर पारख संस्थान, संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद-211011

Scanned with CamScanner

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2020

फार्म-4

'पारख प्रकाश' त्रैमासिक पत्र के संबंध में विवरण

1. प्रकाशन स्थल	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011	6. समस्त पूंजी का स्वामी	कबीर पारख संस्थान पंजीकृत सोसायटी प्रीतम नगर, प्रयागराज
2. प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक	राष्ट्रगत संबंध	
3-4. मुद्रक/प्रकाशक का नाम	गुरुभूषण दास	पता	
राष्ट्रगत संबंध	भारतीय		
पता	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011		
5. संपादक का नाम	धर्मेन्द्र दास		
राष्ट्रगत संबंध	भारतीय		
पता	प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011		

मैं गुरुभूषण दास एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखी बातें पूर्णतया सत्य हैं।

दिनांक : 1-4-2020

(कबीर पारख संस्थान के लिए)
गुरुभूषण दास
प्रकाशक

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं0 अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये | वार्षिक 50 रुपये | आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश
संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर
प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)
Vist us : www.kabirparakh.com
E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

Scanned with CamScanner

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

नीर क्षीर निर्णय करे, हंस लक्ष सहिदान ।
दया रूप थिर पद रहे, सो पारख पहिचान ॥ बीजक, पाठफल ॥

वर्ष 49] प्रयागराज, बैशाख, वि. सं. 2077, अप्रैल 2020, सत्कबीराब्द 621 [अंक 4

तेरा जन एकाध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई ॥ 1 ॥
राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया।
चौथे पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया ॥ 2 ॥
स्तुति निन्दा आसा छाड़ै, तजै मान अभिमाना।
लोहा कंचन सम करि देखैं, ते मूरति भगवाना ॥ 3 ॥
चितै तो माधो चिन्तामणि, हरिपद रमै उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहित ह्वै, कहैं कबीर सो दासा ॥ 4 ॥

× × ×

मन रे कर ले साहेब से प्रीत।
शरण आय सो सबही उबरे, ऐसी उनकी रीत ॥ 1 ॥
सुन्दर देह देखि मति भूलो, जैसे तृण पर शीत।
काँचि देह आखिर गिर पड़िहैं, ज्यों बालू की भीत ॥ 2 ॥
ऐसा जन्म बहुरि न पैहो, जात जन्म सब बीत।
कहैं कबीर चढ़ै गढ़ ऊपर, देइ नगारा जीत ॥ 3 ॥

रहहु संभारे राम विचारे

बहुत सरल शब्दों एवं रूपकों में अध्यात्म की गूढ़ से गूढ़ बातों को प्रकट कर देना सद्गुरु कबीर की विशेषता रही है तो बहुत कम शब्दों में बहुत ज्यादा कह देना भी सद्गुरु कबीर की विशेषता रही है। उन्होंने अपनी वाणियों में जगह-जगह गागर में सागर भर दिया है। उन्होंने बीजक साखी प्रकरण में एक जगह कहा है—आधी साखी सिर खड़ी, जो निरुवारी जाय। (साखी-21) अर्थात यदि निर्णय-विचार कर आचरण कर लिया जाये तो आधी साखी—एक छोटा वाक्य भी कल्याणकारी हो सकता है। सिर खड़ी का अर्थ है रक्षा करना। निर्णय-विचारोपरांत सावधानीपूर्वक आचरण करने से छोटा-सा वाक्य भी जीव का रक्षक बन जाता है।

मानव-जीवन के व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों को समुज्ज्वल बनाने वाला सद्गुरु कबीर का एक सूत्र वाक्य है—"रहहु संभारे राम विचारे।" अपने को सम्हालकर रखो और राम का विचार-चिंतन करते रहो। इस छोटे-से वाक्य में जिसमें मात्र चार शब्द हैं व्यावहारिक और आध्यात्मिक पक्ष की ऐसी कौन-सी बात है जिसे कहा न गया हो। सबकुछ तो इसमें आ गया है। आइये इस विस्तार से विचार करते हैं—

आरामदायक और सुविधापूर्ण जीवन जीने के लिए भौतिक विकास और उपलब्धियों की आवश्यकता से कोई इंकार नहीं कर सकता, परंतु भौतिक विकास और उपलब्धि मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य है आत्मतृप्ति, आत्मसंतुष्टि और आत्मशांति और यह मात्र आत्मसंयम तथा आत्मज्ञान से ही संभव है, भौतिक विकास एवं उपलब्धि से नहीं। आत्मसंयम एवं आत्मज्ञान के अभाव में सारा भौतिक विकास एवं उपलब्धि निरर्थक ही नहीं अनर्थक सिद्ध होंगे और आज यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। आत्मसंयम और आत्मज्ञान के अभाव में अनेक प्रकार की भौतिक उपलब्धियों से संपन्न व्यक्ति भी भीतर से उतना ही अशांत एवं दुखी है जितना उनसे विपन्न व्यक्ति। आत्मसंयम के अभाव में आध्यात्मिक उन्नति तो हो ही नहीं सकती, व्यावहारिक जीवन भी उलझनपूर्ण एवं दुखद बनकर रह जाता है। आत्मसंयम के अभाव में भौतिक विकास विनाश का कारण बनकर रह जाता है, सुख-शांति का नहीं। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—रहहु संभारे राम विचारे। अपने को सम्हालकर रखो और राम का विचार करते रहो।

आत्मसंयम के अभाव में कोरा आत्मज्ञान भी मनुष्य को आत्मतृप्ति और आत्मशांति नहीं दे सकता। जिस प्रकार खेत में बीज बोने के पहले खाद-पानी डालकर तथा जोतकर खेत को मुलायम बना लिया जाता है तभी बीज अंकुरित होते हैं और अच्छी फसल तैयार होती है, अन्यथा नहीं, उसी प्रकार तन-मन-वचन के पूर्ण संयम से जब अन्तःकरण कोमल एवं निर्मल हो जाता है तब उसमें आत्मज्ञान ठहरता है और आत्मशांति की फसल लहलहाती है, अन्यथा नहीं।

सोने-जागने, उठने-बैठने, चलने, फिरने, बोलने-बरतने, खाने-पीने, करने-धरने, सोचने-विचारने—जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में सब जगह सब समय संयम की आवश्यकता है। थोड़ा-सा असंयम होते ही शारीरिक स्वास्थ्य, आपसी व्यवहार तथा मानसिक शांति सब कुछ बिगड़ने लगते हैं और मनुष्य चारों तरफ से दुख-अशांति से घिरने लग जाता है।

सद्गुरु कबीर ने कहा है—"रहहु संभारे।" अपने को सम्हाल कर रखो। वैसे तो आदमी बहुत कुछ सम्हालता ही है, परन्तु जिन्हें सम्हालने से पूरा जीवन सम्हल सकता है उन्हें नहीं सम्हालता। इसलिए घर-परिवार, जमीन-जायदाद, खेत-खलिहान, नौकरी-व्यापार आदि को सम्हालते हुए भी जीवनपर्यंत दुखी, पीड़ित-अशांत बना रहता है, आध्यात्मिक उन्नति तो सपना ही बनकर रह जाती है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। एक दूसरे के सहयोग से ही आपस का व्यवहार सुचारू रूप से संपादित होता है। मनुष्यों का पारस्परिक व्यवहार तथा ज्ञान का आदान-प्रदान वाणी के माध्यम से ही होता है। यदि मनुष्य के पास वाणी नहीं होती तो उसका जीवन भी पशुओं के जीवन सदृश ही होता। वाणी मनुष्य के लिए प्रकृति का अद्‌भुत वरदान है, परन्तु वाणी के असंयम-दुरुपयोग के कारण जितना दुखी-पीड़ित मनुष्य है उतना कोई प्राणी नहीं है। यदि मनुष्य अपनी वाणी पर संयम कर ले और कटु-अश्लील, अनावश्यक, असामयिक, असंयत बोलना छोड़ दे तो घर-परिवार-समाज में जो पारस्परिक कलह, विवाद, झगड़ा, द्वन्द्व की स्थिति है वह अपने आप समाप्त हो जायेगी। यदि मनुष्य वाणी पर संयम कर ले तो पति-पत्नी के बीच तलाक की तथा भाई-भाई एवं पड़ोसी-पड़ोसी के बीच मुकदमे की नौबत ही नहीं आयेगी। वाणी के संयम से कोर्ट में चलने वाले मुकदमों की संख्या में बहुत कमी आ जायेगी। मनुष्य चाहे कितना धनवान, बलवान, पदवान, विद्वान और ज्ञानवान क्यों न हो जाये वाणी-संयम के बिना वह आत्मशांति का अनुभव कभी नहीं कर सकता।

कबीर साहेब ने एक साखी में कहा है—"जिह्वा जिन बस में करी, तिन बस कियो जहान।" अर्थात जिसने अपनी जिह्वा को वश में कर लिया उसने मानो पूरी दुनिया को वश में कर लिया। जिह्वा कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय दोनों का काम करती है। जिह्वा से हम बोलते भी हैं और स्वाद भी ग्रहण करते हैं। जब बोलने अर्थात वाणी में असंयम होता है तब आपसी व्यवहार एवं संबंध बिगड़ता है और स्वाद-खाने में असंयम होता है तब शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। ज्यादा और गलत खाने से जितना रोगी मनुष्य है उतना रोगी कोई अन्य प्राणी नहीं है। पशु-पक्षी प्रायः क्षुधा-पूर्ति के लिए खाते हैं, स्वाद-पूर्ति के लिए नहीं, इसलिए वे अधिकतम निरोग-स्वस्थ रहते हैं, किन्तु मनुष्य क्षुधानिवारण के लिए कम खाता है, स्वादलोलुप होकर ज्यादा खाता है इसलिए प्रायः रोगी-अस्वस्थ रहता है। मनुष्य की इस स्वाद लोलुपता के कारण प्रतिदिन लाखों-करोड़ों निरीह, निर्दोष-मासूम प्राणियों की हत्या होती है और मनुष्य अपने पेट को कब्रिस्तान बना लेता है। यदि मनुष्य अपनी स्वादलोलुपता, जिह्वास्वाद पर संयम कर ले तो प्रतिदिन लाखों-करोड़ों मासूम प्राणियों को जीवनदान मिल जायेगा और वह स्वयं निरोग-स्वस्थ जीवन व्यतीत करने लगेगा।

जो व्यक्ति अपने जिह्वा-स्वाद पर संयम नहीं कर सकता वह आत्मा-परमात्मा की चर्चा भले करता हो वह न तो आत्मा को समझता है और न परमात्मा को, वह न तो शारीरिक रूप से स्वस्थ-निरोग रह सकता है और न मानसिक-आत्मिक सुख-शांति का अनुभव कर सकता है। शुद्ध, सात्त्विक, सुपाच्य, संतुलित, समयानुकूल मात्र क्षुधानिवृत्ति के लिए खाना ही जिह्वा-स्वाद-आहार पर संयम करना है।

कहा जाता है जिह्वा और शिश्न का गहरा संबंध है। जो जितना स्वादलोलुप होगा वह उतना ही काम-लोलुप भी होगा। वैसे तो काम-वासना हर प्राणी के मन में है, क्योंकि काम-वासना से ही शरीर का निर्माण होता है। काम-वासना वश ही स्त्री-पुरुष, नर-मादा का शारीरिक मिलन होता है और उसी मिलन में वासनावशी जीव शरीर-धारण करता है। काम-वासना द्वारा ही प्राणी-जगत की सृष्टि प्रक्रिया चलती है। काम-वासना का उद्देश्य ही है संतानोत्पत्ति। पशु-पक्षी मात्र संतानोत्पत्ति के लिए ही शारीरिक संबंध करते हैं, परंतु मनुष्यों में प्राकृतिक संयम न होने से वह देह-सुख के लिए शारीरिक संबंध करता है और इसके लिए अनेक प्राकृतिक-अप्राकृतिक उपाय भी अपनाता है। व्यभिचार, बलात्कार, वेश्यावृत्ति इसी अत्यधिक काम-वासना की ही देन है और इसी अत्यधिक काम-वासना तथा काम-भोग के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के यौन रोगों से पीड़ित है।

निश्चित है कि कभी भी दुनिया के सभी नर-नारी आजीवन पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते। इसीलिए मनुष्यों में विवाह प्रथा लागू की गई कि मनुष्य विवाह कर एक स्त्री-पुरुष से संयमित काम-संबंध करते हुए धीरे-धीरे इससे ऊपर उठे और संतानोत्पत्ति

की प्रक्रिया भी चलती रहे। परंतु मनुष्य इस उद्देश्य से भटककर काम-वासना का पुतला बनकर समाज में अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देता चला जा रहा है। इसी काम-वासना के कारण आये दिन अनेक मासूम कन्याओं एवं युवतियों का अपहरण हो रहा है, अनेक परिवार टुट रहे हैं, हिंसा-हत्या हो रही है, पति-पत्नी के बीच विवाद तथा तलाक के कारण मासूम बच्चे माता-पिता के प्यार से वंचित हो रहे हैं।

यदि मनुष्य अपनी काम-वासना पर संयम कर ले तो वह एड्स तथा अन्य अनेक यौन रोगों से तो सहज ही छुटकारा पा जायेगा। साथ ही व्यभिचार तथा व्यभिचार जनित हिंसा-हत्या-मुकदमा-तलाक, बलात्कार, लड़कियों का अपहरण, जनसंख्या वृद्धि आदि अनेक सामाजिक-राष्ट्रीय-अंताराष्ट्रीय समस्याओं का स्वतः समाधान होकर मनुष्य शारीरिक-मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगा।

मनुष्य चाहे स्वयं कितनी भी गलती करता हो और दूसरों के साथ कैसा भी प्रतिकूल व्यवहार करता हो वह दूसरों की गलतियों को थोड़ा भी सहन नहीं करना चाहता और दूसरों से प्रतिकूल बात-व्यवहार पाकर तुरन्त क्षुब्ध, उत्तेजित एवं क्रुद्ध हो जाता है। और कोई भी आदमी जब क्रुद्ध होता है तब अपना होश-हवास खो बैठता है। क्रोध ऐसी आंधी है जो विवेक-दीपक को तुरंत बुझा देती है और जब विवेकदीप ही बुझ गया तब मनुष्य होश-हवास में कैसे रह सकता है। फिर तो वह किससे क्या कह बैठे तथा क्या कर बैठे कुछ कहा नहीं जा सकता। थोड़े समय का क्रोध पूरे वातावरण को नरकमय बना देता है।

क्रोध दूसरों को तो क्या अपनों को ही पराया और बैरी बना देता है। यदि मनुष्य अपने क्रोध के आवेश को सम्हाल ले, क्रोध आने पर तुरंत प्रतिक्रिया न करे, कुछ देर शांत रह जाये तो वह स्वयं तथा दूसरे लोग भी बहुत सारे अनर्थों से बच जाये। क्रोध के वेग को थोड़ा सम्हाल लेने पर न तो बंदूक-पिस्तौल से गोली निकलेगी, न हिंसा-हत्या होगी, न कोर्ट-कचहरी दौड़ना पड़ेगा, न जिंदगी भर जेल की चारदीवारी में बंद रहना पड़ेगा। क्रोध ऐसी आग है जो सबसे पहले अपने जनक को ही जलाती है। क्रोधी आदमी तन-मन दोनों से अशांत और पीड़ित रहता है। आत्मशांति का अनुभव तो वह कर ही नहीं सकता। सुखद पारिवारिक जीवन, मानसिक शांति एवं आत्मिक विकास के लिए क्रोध पर संयम अत्यंत आवश्यक है।

काम-क्रोध का तीसरा भाई है लोभ। लोभ को तो पाप का बाप कहा गया है। लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य चोरी-राहजनी करता है, डाका डालता है, मिलावटबाजी-कालाबाजारी-दो नबंर का धंधा करता है, घूस लेता है, गबन-घोटाला करता है। लोभ के वशीभूत होकर ही पुत्र पिता की, भाई भाई की, मित्र मित्र की, पड़ोसी पड़ोसी की हत्या करता है। लोग एक दूसरे को धोखा देते हैं, परस्पर विश्वासघात करते हैं, एक देश दूसरे देश पर आक्रमण कर खून की नदी बहाता है, यहां तक देश-द्रोह करता है, देश-राष्ट्र की गुप्त जानकारी पड़ोसी-दुश्मन देशों को देता है। कौन-सा ऐसा गलत काम है जो लोभी आदमी नहीं कर सकता। यदि आदमी अपने लोभ को सम्हाल कर रखे तो देश-दुनिया की अनेकानेक समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाये। व्यक्ति स्वयं तो शांत रहेगा ही।

सद्गुरु कबीर ने कहा है—नैनन आगे मन बसे, पलक पलक करे दौर॥ अर्थात मन नेत्रों के आगे बसता है और जो कुछ नेत्रों से दिखाई पड़ता है उन्हीं का चिंतन-मनन करता रहता है। नेत्रों के सामने जो कुछ दृश्य आता है यदि उसे देखकर मन में अच्छी भावनाएं जगे तो वह देखना सुख-शांति, प्रगति का कारण बनता है, किन्तु यदि गलत भावना उदय हो तो वह देखना दुख-पीड़ा-अशांति, पतन एवं बदनामी का कारण बनता है। कितने युवक-युवती एक दूसरे को देखकर अत्यंत मोहग्रस्त-पागल बन जाते हैं और रात-दिन उन्हीं का चिंतन करते रहते हैं और तन-मन दोनों से अस्वस्थ हो जाते हैं और गलत कदम उठाकर जिंदगी भर दुख भोगते रहते हैं तथा परिवार-समाज सब से कटकर रह जाते हैं।

यदि मनुष्य नेत्रों पर संयम कर ले तो बहुत सारे अनर्थों से स्वयं को बचाकर सुखपूर्वक जीवन जी सकता है। नेत्र-असंयम के कारण ही आदमी परायी बहू-बेटियों के साथ दुर्व्यवहार करता है और काम-वासना का पुतला बना जिन्दगी भर नाचता रहता है।

वाणी, आहार, काम, क्रोध, लोभ, नेत्र को सम्हालने से आदमी कैसे अनेक अनर्थों से बच सकता है, और स्वस्थ, सुखी तथा स्वतन्त्र जीवन जी सकता यह बात बड़ी आसानी से समझी जा सकती है। यदि आदमी इतने को सम्हाल ले तो जीवन सम्हल जायेगा। हां, इसके साथ एक चीज को और सम्हालकर रखना है—वह है आदमी का अपना मन। मन ही तो सबका मूल है। मन सम्हल गया, मन संयमित हो गया तो सब कुछ स्वतः सम्हल जायेगा, संयमित हो जायेगा। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—एक साधे सब साधिया, सब साधे एक जाय। जैसा सींचे मूल को, फूले फले अघाय॥

मन को सम्हालने एवं संयत रखने का अर्थ है मन में उठने वाले विचारों, संकल्पों, स्मरणों एवं भावनाओं को सम्हालना। यदि मन में बुरे विचार, गलत भावनाएं एवं संकल्प उठ रहे हैं तो किसी अन्य पर संयम करना संभव ही नहीं होगा। यदि गलत सोचना चालू है तो गलत बोलना, गलत खाना, गलत देखना, गलत सुनना, गलत करना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि सब बने रहेंगे। इन्हें रोका ही नहीं जा सकता। अतः सबसे पहले मन को सम्हालकर रखना आवश्यक है।

मन को सम्हालकर रखने का अर्थ है मन में किसी प्रकार का कुचिंतन, कुविचार, कुसंकल्प, कुभावनाएं न आने देना, किन्तु मन को सदैव अच्छे, सकारात्मक चिंतन, विचार, संकल्प, भावना में लगाकर रखना। जिस चिंतन, विचार, संकल्प, भावना, स्मरण के आने पर तन-मन उत्तेजित-अशांत हो जायें वह सब कुचिंतन, कुविचार, कुसंकल्प, कुभावना है तथा जिस चिंतन, विचार, संकल्प, भावना के आने पर तन-मन स्वस्थ, संयत, शांत रहें वह सब शुभ चिंतन, विचार, संकल्प, भावना है। निश्चित है इसके लिए लंबे समय तक दृढ़तापूर्वक अभ्यास की आवश्यकता है। मनुष्य के संकल्प और अभ्यास में बड़ी शक्ति है। जो मन कभी एक क्षण स्थिर-शांत नहीं रहता, सदैव चंचल बना यहां-वहां दौड़ता रहता है निरंतर के अभ्यास से वह शांत होता चला जाता है और एक दिन पूरा शांत हो जाता है। हां, मन को सम्हाल कर रखने के लिए अभ्यास के साथ वैराग्य की आवश्यकता है। वैराग्य केवल घर-द्वार छोड़ना नहीं है, किन्तु वैराग्य है तन-मन-वचन के उन सारे क्रिया-कलापों का त्याग जिनसे तन-मन उत्तेजित-अशांत होते हैं और अंततोगत्वा सुख के बदले दुखों की प्राप्ति होती है।

जब अपने आप को सब तरफ से सम्हाल लिया जाता है, अपने आप पर पूर्ण संयम हो जाता है तब अंतःकरण शुद्ध निर्मल हो जाता है तब राम पर विचार करना सरल हो जाता है। सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं—

अंतस थिर ज्वाला रहित, अभय न चिंता जब्ब।
फिक्र रहित मन निरस जहँ, शोध यथारथ तब्ब॥

अर्थात—जब अंतःकरण कामना-वासना की ज्वाला से रहित होता है, मन निर्भय-निश्चिंत होता है, सब तरफ से उदासीन, अनासक्त, निष्काम होता है तब स्वस्वरूप का, स्वरूप-राम का यथार्थ शोधन होता है।

''रहहु संभारे' के बाद सद्गुरु कहते हैं ''राम विचारे।'' राम का विचार करो। यह सर्वविदित है कि कबीर साहेब का राम न तो दाशरथी राम है न आकाशीय राम है, किन्तु उनका राम घट-घट वासी है। राम का विचार करने का अर्थ राम-राम जपना नहीं है, किन्तु आत्मचिंतन-स्वरूपविचार करना है।

हर मनुष्य के दो व्यक्तित्व होते हैं—एक बाहरी दूसरा आंतरिक। बाहरी व्यक्तित्व दैहिक नाम-रूप को लेकर होता है, जो नकली और क्षणभंगुर है। आंतरिक व्यक्तित्व आत्मिक है, जो हर मनुष्य का अपना अस्तित्व है, जो असली और शाश्वत है। जो नकली और क्षणभंगुर

है उस दैहिक व्यक्तित्व से हर कोई परिचित है किन्तु असली और शाश्वत व्यक्तित्व से अपरिचित है। इसलिए वह अपने स्थायी सुख और विश्राम स्थल का आधार बाहर खोज रहा है। परंतु अपने आत्म अस्तित्व को छोड़कर मनुष्य चाहे जितना भटक ले अंत में उसे शून्य ही हाथ आयेगा।

राम का विचार करने का अर्थ है—यह समझना कि जिस ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म को मैं बाहर खोज रहा हूं वह मेरा अपना आत्म अस्तित्व है, मैं स्वयं हूं। मेरा स्थायी आधार, स्थायी धाम मुझसे अलग कोई और कहीं नहीं है, किन्तु मेरा स्थायी आधार, स्थायी धाम मैं स्वयं हूं। मुझे बाहर से कुछ पाकर तृप्त नहीं होना है, किन्तु मैं स्वतः तृप्तस्वरूप हूं। स्थायी सुख, मोक्ष, ब्रह्म, परमात्मा बाहर से मिलेगा इस भ्रम और इच्छा के कारण मैं अतृप्त बना भटक रहा हूं। यदि बाहर से कुछ पाने की इच्छा-कामना का त्याग कर दिया जाये तो भटकने का एवं अतृप्ति का कोई कारण नहीं है।

यह अच्छी तरह से समझ लेना होगा कि बाहर से जो कुछ भी मिलेगा चाहे उसका नाम ईश्वर-परमात्मा ही क्यों न रख लिया जाये, वह माया ही होगा, क्योंकि उसका-हमारा संबंध मन-इन्द्रियों द्वारा ही होगा और मन-इंद्रियों से जो कुछ भी मिलेगा वह परमात्मा न होकर माया होगी। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—गो गोचर जहँ लग मन जाई। सो सब माया जानहु भाई ॥ तथा—देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं। अर्थात जो कुछ देखने, सुनने, मनन करने में आयेगा वह मोह का ही कारण बनेगा, परमार्थ-परमात्मा का नहीं। जो भी बाहर से मिलेगा, मिलकर बिछुड़ जायेगा और जो मिले और बिछुड़े वही तो माया है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—"संतो आवै जाय सो माया।"

दृश्य और द्रष्टा, श्राव्य और श्रोता, कल्पना और कल्पक कभी एक नहीं होते, सदैव अलग-अलग होते हैं। दृश्य, श्राव्य एवं कल्पना को छोड़कर द्रष्टा, श्रोता, कल्पक को समझना और समझ कर अपने मन-इन्द्रियों के सारे व्यवहार-व्यापार को समेटकर अपने द्रष्टा स्वरूप में स्थित-शांत हो जाना ही राम पर विचार करना है।

मैं शुद्ध-बुद्ध, अजर, अमर, अविनाशी, जड़ तत्त्वों से सर्वथा भिन्न चेतन हूं मात्र इन शब्दों को याद कर दोहराते रहना राम पर विचार करना नहीं है, किन्तु मन-इन्द्रियों के सारे अशुद्ध-मलिन कार्य-व्यवहार को सर्वथा त्यागकर शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक शुद्ध कार्य-व्यवहार को करते हुए सबसे सर्वथा निर्मोह, निष्काम, अनासक्त होकर अपने स्वरूपभाव में मन को लगाकर रखना राम का विचार करना है।

सत्संग, स्वाध्याय, सद्गुरु-संतों की संगति से यह तो ज्ञान हो जाता है कि मैं देह-मन-इंद्रिय-बुद्धि नहीं किन्तु इन सबका द्रष्टा, मन्ता, बोद्धा, ज्ञाता ज्ञानस्वरूप चेतन हूं, परंतु मन इस ज्ञान में टिक नहीं पाता। वह इससे बार-बार फिसलकर शरीर-संसार के भोगों के पीछे भागता रहता है। इस बोध भाव में मन तभी टिकेगा जब सब तरफ से अपने को सम्हालकर रखा जायेगा। तन-मन-वचन के सारे क्रिया-कलापों पर निरंतर सावधानीपूर्वक संयम रखा जायेगा।

पूर्ण आत्मतृप्ति, आत्मसंतुष्टि एवं आत्मशांति का अनुभव दृढ़ वैराग्यपूर्वक निर्भ्रान्त आत्मज्ञान से ही होगा। अन्य साधन से नहीं। मन-इंद्रियों के संयम से स्वरूपबोध, आत्मज्ञान में दृढ़ता होती है और पूर्ण स्वरूपज्ञान होने पर मन-इन्द्रियों के संयम को बल मिलता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—रहहु संभारे राम विचारे।

हम भी अपने आपको सब तरफ से सम्हालकर रखें और सारी भूल-भ्रांति छोड़कर तथा देहनिर्वाह शुद्ध ढंग से करते हुए मन को देह भाव से ऊपर उठाकर आत्मभाव में लगाकर रखें। इसी से ही व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक दोनों दिशा में उन्नति कर सकेंगे तथा इस मानव जीवन का पूरा लाभ ले सकेंगे। जीते जी स्वर्ग तथा मोक्ष का अनुभव होता रहेगा। बस सद्गुरु कबीर के इस महामंत्र को सदैव दिल-दिमाग में बसाकर रखें और मनन करते रहें—रहहु संभारे राम विचारे।

—धर्मेन्द्र दास

साधना के लिए समय, स्थान तथा परिवेश

लेखक—श्री सीताराम गुप्ता

अभ्यास के लिए हमें उपयुक्त समय, स्थान तथा परिवेश का चुनाव करना चाहिए। हमारे ऋषि-मुनि पहाड़ों की गुफाओं में तपस्या या साधना करते थे। इसका एक लाभ तो यह था कि पहाड़ों पर ठंड होने से साधना करना आसान होता था तथा साथ ही गुफा आदि बन्द स्थान पर अधिक ठंड नहीं लगती।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गुफा आदि स्थानों पर वात प्रवाह नहीं होता, जिससे साधना के दौरान एकत्र उष्मा तथा ऊर्जा आस-पास बनी रहती है तथा रुकावट भी उत्पन्न नहीं होती।

साधना के लिए हमें चाहिए कि हम एकान्त स्थान का चुनाव करें, जहां हम घंटों भी बैठें, तो कोई हमें परेशान न कर सके। यह स्थान शोर-शराबे से भी दूर होना चाहिए। इस स्थान पर टेलीफ़ोन, कॉलबेल, फ्रिज़ या कम्प्यूटर आदि इलेक्ट्रॉनिक उपकरण नहीं होने चाहिए। यदि हैं, तो इन्हें बन्द कर दें।

यह स्थान ठंडा होना चाहिए, लेकिन हवा का तेज़ प्रवाह बिल्कुल नहीं होना चाहिए। तेज़ प्रकाश भी ज़रूरी नहीं है। कम रोशनी या अंधेरा अच्छा रहता है। इस स्थान पर घुटन बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। यदि साधना सामूहिक रूप से की जा रही हो, तो व्यक्तियों की संख्या के अनुसार स्थान भी काफ़ी होना चाहिए।

साधना के लिए ज़मीन या फ़र्श आदर्श स्थल हैं, लेकिन आवश्यकतानुसार पलंग, कुर्सी, गद्दे या कुशन आदि का इस्तेमाल किया जा सकता है। कुछ अभ्यास ज़मीन पर या पलंग पर लेटकर तथा कुछ कुर्सी आदि पर सुविधानुसार किए जा सकते हैं।

शान्त स्थान की तरह शान्त समय का भी चुनाव करना चाहिए। वैसे तो आज के व्यस्त जीवन में सुविधानुसार जब चाहे अभ्यास कर लें, लेकिन सुबह का समय उत्तम है। वैसे भी सुबह साधना करनेवालों को बड़ी सुविधा रहती है। जल्दी उठकर रोज़ के कामों से फ़ुर्सत पाकर यदि व्यायाम आदि करते हैं, तो व्यायाम या योगासन आदि के बाद साधना करें।

साधना के बाद व्यायाम आदि बिल्कुल न करें। ध्यान या साधना के बाद थोड़ी देर बाद ही नाश्ता करें, तुरन्त बाद नहीं। भोजन के फ़ौरन बाद भी साधना मना है। कहने का मतलब यह है कि व्यायाम, ध्यान-साधना आदि से पहले तथा एकदम बाद में भोजन आदि न करें।

साधना-स्थल साफ़-सुथरा तथा स्वच्छ होना चाहिए। वहां किसी प्रकार की गन्दगी, कूड़ा-करकट या बेकार की चीज़ें नहीं होनी चाहिए। दीवारें भी एकदम साफ़-सुथरी हों तथा चित्र इत्यादि हों तो अवसर के अनुसार। मन को भटकानेवाली या उलझानेवाली कला-कृतियां (Abstract Paintings) बिल्कुल नहीं होनी चाहिए। प्रकृति के सुरम्य चित्र या फूलों के पौधे इत्यादि हों, तो बहुत अच्छा है।

आस-पास किसी प्रकार की दुर्गन्ध या तेज़ कृत्रिम गन्ध नहीं होनी चाहिए। प्राकृतिक गन्ध जो मनोनुकूल हो, साधना में सहायक होती है। ताज़े फूलों या वनस्पतियों की गन्ध अच्छी होती है। धूप, अगरबत्ती तथा कपूर आदि का इस्तेमाल किया जा सकता है। बन्द स्थान या कमरा हो तो धूप जलाने से परेशानी हो सकती है। कपूर का इस्तेमाल करना चाहिए, लेकिन जलाकर नहीं बल्कि गर्म करके। इसके लिए मच्छर भगानेवाली मैट मशीन का इस्तेमाल करें।

साधना में गन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि साधना के समय आप नियमित रूप से किसी गन्ध का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन किसी समय साधना का मन न हो, तो भी उस गन्ध को सूंघने के बाद आप साधना के लिए स्वतः एकदम तैयार हो जाएंगे। गन्ध आपको साधना के लिए प्रेरित करेगी।

साधना के समय शरीर स्वच्छ होना चाहिए। पसीने की बदबू आपके ध्यान को एकाग्र होने में बाधा उत्पन्न करेगी। अधिक गर्मी, पसीना, चिपचिपाहट, तेज़ लू, हवा की सरसराहट तथा तेज़ सर्दी भी आपका ध्यान अपनी ओर खींचेंगे। इसलिए सही स्थान का चयन आवश्यक होने के साथ-साथ तेज़ सर्दी से बचाव के लिए पर्याप्त वस्त्रों का चुनाव भी आवश्यक है।

साधना के समय मल-मूत्र आदि का दबाव भी नहीं होना चाहिए। एक बार आपको ध्यान-साधना की आदत पड़ जाए, तो कम सुविधाजनक स्थितियों में भी आप बख़ूबी अभ्यास कर लेंगे।

साधना नियमित रूप से की जानी चाहिए, लेकिन किसी कारण से यदि साधना में रुकावट आ जाए, तो इसका अर्थ यह नहीं कि आप साधना दोबारा शुरू ही नहीं कर सकते। जितनी बार व्यवधान उत्पन्न हो, हर अगली बार ज़्यादा गम्भीरता से साधना शुरू कर दें। प्रतिदिन एक ही समय पर साधना करें, तो उसका प्रभाव ज़्यादा अच्छा होता है।

और यदि आप अभ्यास के लिए एक निश्चित स्थान का चुनाव करने के बाद प्रतिदिन उसी स्थान पर अभ्यास करते हैं तो बहुत अच्छी बात है, लेकिन उससे भी अच्छी बात यह है कि आप करें जरूर, कहीं भी करें किसी समय भी करें।

जब आपको आनन्द आएगा, तो आप नियमित रूप से एक ही स्थान पर; एक नियत समय पर अभ्यास करना शुरू कर देंगे। वस्त्र आरामदायक हों, टाइट न हों। कमर में बैल्ट; अंगूठी, घड़ी तथा अन्य आभूषण आदि न पहने हों, तो ठीक है। शरीर पर कोई वस्त्र या आभूषण यदि किसी भी तरह आपका ध्यान आकर्षित करते हैं या परेशान करते हैं, तो उनको पहनने से ध्यान में बाधा उत्पन्न होगी ही। सरसराहट पैदा करनेवाले, खुजली पैदा करनेवाले, सिन्थेटिक या रेशमी या अन्य प्रकार के कपड़ों की अपेक्षा सूती कपड़े साधना के लिए उत्तम हैं।

यहां एक प्रश्न उठता है कि यदि उपयुक्त स्थितियां न हों, तो क्या साधना सम्भव ही नहीं है? साधना के लिए उपयुक्त स्थितियां आवश्यक हैं, विशेषकर शुरू में साधना सीखने के समय। इसके लिए ज़रूरी है कि जब हम सीखना शुरू करें, तो सही स्थितियों में ही शुरू करें। इसके लिए कोलाहल से दूर शान्त स्थानों पर चले जाएं। पार्कों में या शहर से बाहर भी जा सकते हैं; आश्रमों में या साधनालयों में। एक बार ध्यान लगाने का अभ्यास शुरू हो गया, तो कम अनुकूल परिस्थितियों में भी अभ्यास करना सम्भव हो सकेगा।

आत्मपरक अधिगम तथा वस्तुपरक अधिगम
(Subjective Learning and Objective Learning)

रचनात्मक आत्म-सुझाव या निश्चयात्मक स्वीकारोक्ति प्रणाली को हम बीटा लेवल अर्थात मन के चेतन स्तर पर या अल्फा लेवल अर्थात मन के अवचेतन स्तर पर इस्तेमाल कर सकते हैं।

जब मन द्वारा मस्तिष्क की यह प्रोग्रामिंग बीटा लेवल पर की जाती है, तो इसे वस्तुपरक दृष्टिकोण कहते हैं, लेकिन जब यह प्रोग्रामिंग अल्फा लेवल पर की जाती है, तो उसे आत्मपरक दृष्टिकोण कहते हैं। असर डालने की दृष्टि से आत्मपरक दृष्टिकोण उत्तम कोटि का है। यह न केवल व्यक्ति के सन्दर्भ में उचित है, बल्कि एक समाज, एक राष्ट्र के विषय में भी उतनी ही सही है। 'न्यू थिंकिंग फ़ोर द न्यू मिलेनियम' के लेखक ऐडवर्ड डिबोनो का कहना है कि **''पिछली सहस्राब्दि हमारे लिए कोई बड़ी सफलता नहीं है। हमने विज्ञान और तकनीकी ज्ञान में प्रगति की है, लेकिन मानव व्यवहार में नहीं।''**

इस दौरान युद्ध उत्पीड़न, संघर्ष, द्वन्द्व, विरोध, भेद-भाव, अन्याय तथा दरिद्रता का साम्राज्य रहा है। यह सम्भवतः कमज़ोर सोच के कारण हुआ। उनका विश्वास है कि हम वास्तव में चिन्तन के अपने श्रेष्ठ, किन्तु सीमित साधन या तरीक़े के कारण पिछड़े रहे। उनका मानना है कि पिछली सहस्राब्दि की सोच का 'चिन्तन

क्या है?' से सम्बन्धित है, जो कि विश्लेषण, आलोचना तथा तर्क-वितर्क का चिन्तन है।

जो चिन्तन हमने पर्याप्त रूप से विकसित नहीं किया है, वह 'क्या हो सकता है?' के चिन्तन से सम्बन्ध रखता है। यही संघर्ष तथा समस्याओं का नियोजन उन्नत पद्धति से करता है। इसमें सर्जन पर बल दिया है, न कि निर्णय पर। यह एक आत्मपरक उपागम या दृष्टिकोण है। एक दृष्टिकोण, जिसमें मस्तिष्क के दाएं गोलार्द्ध का इस्तेमाल है, एक उपागम जो पदार्थ की भीतरी परतों से बाहरी परतों की ओर काम करती है। इसमें सम्मिलित है, हमारे मन की उपचारक शक्ति।

आत्मपरक उपचार तथा वस्तुपरक उपचार
(Subjective Healing and Objective Healing)

जब उपचार-कार्य सम्पन्न करने के लिए भौतिक संसाधनों का इस्तेमाल किया जाता है, तो यह उपचार वस्तुपरक उपचार (Objective Healing) कहलाता है। जैसे सिरदर्द होने पर सिरदर्द को दूर करने के लिए कोई गोली लेना या बाम इत्यादि मलना। इसके अलावा जब उपचार की प्रक्रिया में मानसिक संसाधनों या शक्ति का इस्तेमाल किया जाता है, तो वह आत्मपरक उपचार (Subjective Healing) होता है।

इसी में मन द्वारा उपचार की विभिन्न विधियों का सहारा लिया जाता है। जहां तक स्वास्थ्य को क़ायम रखने की बात है, आत्मपरक उपचार पद्धति सबसे अच्छी है। यदि आप स्वस्थ हैं और भविष्य में भी स्वस्थ बने रहना चाहते हैं, तो अपने मन में इस बात को दृढ़ता से बिठा लीजिए कि 'मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूं।'

आज आप पूरे स्वस्थ हैं, फिर भी चिन्ता कर रहे हैं कि कहीं कल बीमार न हो जाऊं। जितना आप अपने स्वास्थ्य के बारे में सोचते हैं, उससे अधिक विभिन्न बीमारियों और उनके लक्षणों के विषय में सोचते हैं और उनसे अपनी तुलना करते-करते बीमारियां मोल ले लेते हैं।

रेकी का एक सिद्धान्त है, 'केवल आज के लिए चिन्ता मत कीजिए।' जब भी आपको स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ता हो, तो इस नियम का पालन कीजिए। चिन्ता का नाम भी मत लीजिए। बार-बार मन में दोहराइए : "आज मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ और प्रसन्नचित्त हूं।" यदि कोई छोटी-मोटी शिकायत है, तो खान-पान में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर लीजिए। सादा हलका भोजन लीजिए। पानी ख़ूब पीजिए और अनुभव कीजिए कि मैं अच्छा हो रहा हूं। बताए गए तरीक़े से मन में दोहराइए: "प्रतिक्षण मेरा स्वास्थ्य अच्छा और अच्छा हो रहा है।"

मेरे पास कई ऐसे पत्र आए, जिनमें पूछा गया कि तेज़ पीड़ा की हालत में कोई कैसे मन की शक्ति का उपयोग कर उपचार कर सकता है? प्रश्न बिल्कुल उचित है। तेज़ दर्द या भयंकर रोग की स्थिति में उपचार की आदर्श स्थिति वास्तव में वस्तुपरक उपचार तथा आत्मपरक उपचार दोनों को साथ-साथ इस्तेमाल करके प्राप्त की जा सकती है, जिससे पदार्थ की बाहरी सतह से आन्तरिक दिशा में तथा आन्तरिक दिशा से बाहर की ओर साथ-साथ रूपान्तरण सम्भव हो सके। यहां रूपान्तरण का अर्थ है, मन में विचारों को परिवर्तित कर उन्हें सही दिशा देकर शरीर को बदलना या रोग-मुक्त करना।

जंगलों में लगी भयंकर आग को बुझाने के लिए जिस तरफ़ आग बढ़ रही है, उस तरफ़ से कुछ दूरी से आग की दिशा में बढ़नेवाली और आग लगा दी जाती है। ये दोनों ओर से बढ़नेवाली आग बीच में आकर एक-दूसरे से मिलती हैं और वहीं ख़त्म हो जाती हैं। इसी प्रकार रोग दूर करने के लिए बाहरी दवा के साथ-साथ अन्दर की दवा भी ज़रूर करें। ईसा मसीह कहते हैं, "अपने शत्रु को प्रेम करो, जो तुम्हें सताए उसके लिए प्रार्थना करो।"

शत्रु से निपटने के दो तरीक़े हैं : एक तो यह है कि उसके निकट पहुंच कर दो-दो हाथ कर लिये जाएं और दूसरा उसके और निकट उसके हृदय में स्थान प्राप्त कर

लिया जाए। पहला तरीक़ा बाहरी या वस्तुपरक है, जो अस्थायी है और दूसरा तरीक़ा आत्मपरक है, जो अन्दर से काम करता है। पहले तरीक़े में आप शत्रु को तो दबा सकते हैं शत्रुता को नहीं, रोग के लक्षणों को कुछ समय के लिए दबा सकते हैं रोग के कारण को नहीं। रोग का कारण शत्रुता है उसे आत्मपरक उपचार से ख़त्म कीजिए।

निश्चयात्मक स्वीकारोक्ति चिकित्सा

मन द्वारा उपचार की प्रक्रिया में 'निश्चयात्मक स्वीकारोक्ति' (Affirmation) या 'रचनात्मक आत्म-सुझाव' (Constructive Auto-suggesion) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मन द्वारा उपचार में यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व या घटक ही नहीं है, बल्कि अपने आप में एक सम्पूर्ण उपचार पद्धति भी है और मन द्वारा उपचार के सभी तत्त्व इसमें समाहित हैं। इसे 'रीकंडीशनिंग थैरेपी' भी कहते हैं, क्योंकि इस विधि द्वारा मन में जिन अवांछित घातक या नकारात्मक विचारों की कंडीशनिंग हो चुकी है, उनको मन से निकालकर मनचाहे नए, उपयोगी या सकारात्मक विचारों की पुनः कंडीशनिंग की जाती है। यह ब्रेन वाशिंग जैसी पद्धति है। मन की धुलाई की जाती है, जिससे पुराने विचारों के प्रभाव या संस्कार कमज़ोर होकर समाप्त हो जाते हैं तथा नए संस्कार निर्मित होते हैं।

हमारा वर्तमान स्वास्थ्य, वर्तमान बीमारी या पीड़ा, वर्तमान जीवन-प्रवाह तथा समूची वर्तमान सामाजिक व आर्थिक स्थिति हमारी पिछली सोच, हमारे पिछले चिन्तन का परिणाम है। जो हमने पीछे सोचा उसी की मन में फ़ीडिंग का, उसी कंडीशनिंग का परिणाम हमारा वर्तमान है, तो वर्तमान की सोच, वर्तमान के चिन्तन तथा कंडीशनिंग का कल पर या आनेवाले हर क्षण पर ज़रूर प्रभाव पड़ेगा। इसके लिए आवश्यक है कि मन की पिछली कंडीशनिंग को प्रभावहीन किया जाए तथा पुनः सही कंडीशनिंग की जाए। इस सारी प्रक्रिया में दो बातें प्रमुख हैं—एक है डीकंडीशनिंग तथा दूसरी रीकंडीशनिंग।

1. डीकंडीशनिंग (Deconditioning)—इस अवस्था में सबसे पहले हम अपने अवचेतन मन की ग़लत धारणाओं की पहचान कर उनसे छुटकारा पाते हैं। इसके लिए सबसे पहले हम किसी भी ध्यान-पद्धति या मेडिटेशन के द्वारा शरीर तथा मन को शान्त कर लेते हैं। यह वह अवस्था है, जब मन-रूपी पात्र में पड़े बेकार बासी भोजन को निकालकर उसे ख़ाली कर लिया जाता है तथा उपयोगी ताज़ा भोजन डालने के लिए मांज-धोकर स्वच्छ कर लिया जाता है। जब तक हम मन-रूपी पात्र में से काम न आने वाले पदार्थ-रूपी ग़लत विचार बाहर नहीं निकाल फेंकेंगे, तब तक उसमें मनचाहे उपयोगी विचार नहीं डाल सकेंगे। डालने का प्रयास करेंगे, तो वह निरर्थक होगा। उपयोगी पदार्थ बाहर बिखरते चले जाएंगे।

इसलिए मन-रूपी पात्र को ख़ाली तथा स्वच्छ करना आवश्यक है। यही मन की डीकंडीशनिंग है। शरीर तथा मन की शान्त, निश्चल तथा तनाव-मुक्त अवस्था में मन में दबे विकार या अनुपयोगी ग़लत धारणाएं निकलकर बाहर हो जाती हैं। मन बीज बोने के लिए तैयार भूमि की तरह हो जाता है।

2. रीकंडीशनिंग (Reconditioning)— एक बार पात्र के ख़ाली तथा स्वच्छ होने की देर है, उसके बाद उसमें मनचाहे उपयोगी पदार्थ डालना बहुत सरल है। मन-रूपी पात्र के स्वच्छ होने पर उसमें उपयोगी विचार-रूपी पदार्थ सावधानी से डालें, ताकि मनचाही बाहरी स्थिति यथा अच्छा स्वास्थ्य, रोग-मुक्ति, उत्साह, प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा सम्पन्नता की प्राप्ति सम्भव हो सके और इसके लिए मनचाहे सकारात्मक तथा आशावादी विचारों द्वारा मन को फिर से भरना ही मन की रीकंडीशनिंग है।

रचनात्मक आत्म-सुझाव भी यही है, क्योंकि इसमें भी स्वयं को अच्छे सुझाव दिए जाते हैं, जिससे बुरे विचार बदल जाएं। लेकिन इसकी भी वही प्रक्रिया है अर्थात पहले पुराने विचारों से मुक्ति तथा उसके बाद नए

सुझाव। ये सुझाव कुछ सकारात्मक वाक्यों के रूप में ही होते हैं और यही वाक्य निश्चयात्मक स्वीकारोक्तियां हैं।

गौतम बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं :

1. दुख है,

2. दुख का कारण है,

3. दुख का निदान है,

4. वह मार्ग भी है, जिससे दुख का निदान सम्भव है।

गौतम बुद्ध के मतानुसार आष्टांगिक मार्ग ही वह मध्यम मार्ग है, जिससे दुखों का निदान होता है। इस आष्टांगिक मार्ग में से एक अंग है—'सम्मा वायामो' अर्थात सम्यक् व्यायाम। व्यायाम का अर्थ शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि मन का व्यायाम है। मन की साधना है। इसमें चार बातें हैं—पहली बात तो यह कि हमारे अन्दर जो दुर्गुण हैं, वे दूर हो जाएं। दूसरी बात यह कि नए दुर्गुण पैदा न हों। तीसरी यह कि सद्गुण बने रहें तथा चौथी यह कि नए गुण भी विकसित होते रहें। डीकंडीशनिंग द्वारा हम दुर्गुणों से मुक्ति पा सकते हैं तथा रीकंडीशनिंग द्वारा हम सद्गुणों का विकास कर सकते हैं।

यदि हम कहें कि सद्गुणों या उपयोगी भावों का विकास हो रहा है, तो स्वतः दुर्गुणों या अनुपयोगी भावों का ह्रास भी हो रहा है। इसलिए लगातार डीकंडीशनिंग तथा रीकंडीशनिंग द्वारा हम 'सम्यक् व्यायाम' की स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। यही व्यक्तित्व का फिर से निर्माण है तथा व्यक्ति का रूपान्तरण है।

इस सारी प्रक्रिया को हम 'संकल्प योग' या 'संकल्प-शक्ति चिकित्सा' भी कह सकते हैं। जब हम दृढ़-निश्चय के साथ किसी शब्द या वाक्य को दोहराते हैं, तो उसकी एक छवि हमारे मानस पर बन जाती है। यदि कोई व्यक्ति बार-बार दोहराता है : 'मैं सदा सत्य बोलता हूं' तो उस व्यक्ति के मन में सत्यवादी हरिश्चन्द्र, गांधी जी या अन्य किसी सत्य के महान प्रेमी व्यक्ति की तस्वीर फ़ौरन उभरती है।'

प्रत्येक छवि या विचार एक रासायनिक सन्देश शरीर की प्रत्येक कोशिश की संचेतना को प्रेषित करता है और मस्तिष्क की कोशिकाओं (न्यूरॉन्स) को जैसी सूचना दी जाती है, वह फ़ौरन उसी दिशा में सक्रिय होकर सूचना के अनुसार व्यवहार शुरू कर हमारे शरीर या व्यक्तित्व में उन विशेषताओं को डालकर ही दम लेती हैं। इसमें कितना समय लगता है, यह हमारी इच्छा-शक्ति तथा अपने विचारों को फ़ीड करने की हमारी तेज़ी तथा यथार्थता पर निर्भर है। कोई भी संकल्प लेने पर हमारे मस्तिष्क में मौजूद न्यूरॉन्स सक्रिय हो उठते हैं।

यदि संकल्प-शक्ति कमज़ोर है, तो मस्तिष्क में मौजूद सभी न्यूरॉन्स सक्रिय नहीं हो पाते, लेकिन यदि संकल्प-शक्ति में दृढ़ता है, तो एक के बाद एक सभी न्यूरॉन्स सक्रिय हो उठते हैं और दृढ़ संकल्प-शक्तिवाला व्यक्ति कठिन-से-कठिन काम करने में समर्थ हो जाता है। मन की संकल्प-शक्ति एक सूक्ष्म तत्त्व है, परन्तु इसका प्रभाव स्थूल रूप में प्रकट होता है।

निश्चयात्मक स्वीकारोक्ति भी एक प्रकार से संकल्प करना ही तो है। इसमें भी दृढ़-निश्चय के साथ अच्छे की प्रतिज्ञा की जाती है। अच्छे की प्रतिज्ञा का अर्थ है, बुरे का अदृश्य हो जाना। इसे 'भावना योग' भी कह सकते हैं। मन में उपयोगी तथा उचित भावनाओं का निर्माण। भावना से गुण संक्रमित होते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं :

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

स्वास्थ्य की भावना से स्वस्थ होंगे तथा सम्पन्नता की भावना के विकास से सम्पन्नता आएगी। सुरक्षा की भावना आपको तनाव-मुक्त कर आरोग्य प्रदान करेगी तथा असुरक्षा की भावना तनाव में रखेगी। तनाव अर्थात बीमारी।

सकारात्मक भावना आपको प्रसन्नता प्रदान कर सफलता की ओर आगे बढ़ाएगी तथा नकारात्मक भावना दुखी कर असफलता की ओर ले जाएगी।

भावनाओं पर नियन्त्रण, अनुपयोगी भावनाओं को ख़त्म कर उपयोगी भावनाओं का विकास, यही रचनात्मक आत्म-सुझाव है।

भावना क्या है? किसी वस्तु के प्रति एकाग्रता तथा तन्मयता। वही क्रम यहां है—शब्द, छवि तथा रासायनिक सन्देश। भावना द्वारा सन्देश। भावना ही रासायनिक सन्देश है, जो मस्तिष्क की कोशिकाओं को उत्प्रेरित करता है। भावना ही व्यक्तित्व निर्माण का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। मैं जो होना चाहता हूं, उसकी सफलता का मूल भावना ही तो है।

जैसी भावना की जाती है, वैसा ही व्यक्तित्व या स्वास्थ्य निर्मित हो जाता है। ज़रूरत है तो बस भावना की तीव्रता, स्थायित्व तथा पुनरावृत्ति की। इसलिए दृढ़-निश्चय के साथ अच्छे की प्रतिज्ञा कीजिए तथा उसी के अनुसार भावना का निर्माण कीजिए, बुरा स्वयं ग़ायब हो जाएगा।

अपने मन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए निम्नलिखित निश्चयात्मक स्वीकारोक्तियां कीजिए :

"मैं अपने अवचेतन मन की शक्ति द्वारा सभी काम कर सकता हूं।"

"मैं उत्तम चुनाव करने की क्षमता रखता हूं।"

"मुझमें चुनाव करने तथा इसे कार्य-रूप में बदलने की शक्ति है।"

"मैं उत्तम स्वास्थ्य, प्रसन्नता, पूरी अनुरूपता तथा सम्पूर्णता का चुनाव करता हूं।"

"मैं प्रेम, प्रकाश, असीमित बौद्धिकता तथा ज्ञान का चुनाव करता हूं।"

"मैं जीवन की इन सभी आशाजनक तथा प्रगतिशील विशेषताओं का चयन करता हूं तथा इन्हें कार्य-रूप में बदलता हूं।"

"केवल सकारात्मक विचार तथा सुझाव ही मेरे मन को किसी भी स्तर पर गहरे प्रभावित करते हैं।"

('मन द्वारा उपचार' से साभार)

है प्रीत जहाँ की रीत सदा

रचयिता—बरसाइत दास महंत

है प्रीत जहाँ की रीत सदा और मेहनत भगवान।
स्वर्ग से सुन्दर देश है मेरा, कैसे करूँ बखान॥
मेरा भारत देश महान... मेरा प्यारा हिन्दुस्तान...

कोई कहता इसे इण्डिया, कोई कहता हिन्दुस्तान।
आर्यावर्त कोइ जम्बू द्वीप कोइ भारतवर्ष महान।
है 'वन्दे मातरम' गीत जहाँ का, 'जन-गण-मन' है गान॥

रवि-शशि जिसकी करत आरती, बादल शंख बजाते।
रत्नाकर है चरण पखारत, उडुगण फूल चढ़ाते।
नदियाँ जिसकी करत वन्दना और झरने गाते गान॥

जहाँ सुहाना होत सबेरा और होत खुशनुमा साँझ।
जहाँ सूर्य दिवस में स्वर्ण घोलता, रजत रात्रि में चाँद।
जहाँ खगदल गाते गीत मनोहर कोयल छेड़े तान॥

जहाँ सुख का सूरज रोज निकलता, खिलता अमन का चाँद।
जहाँ उषा अमृत बरसाती और मधु बरसाती शाम।
सत्य, अहिंसा और धर्म से जिस देश की है पहचान॥

वन-वन में जहाँ राम विचरते व ग्राम-ग्राम घनश्याम।
जहाँ डगर-डगर में कबीर-नानक लेते प्रभु का नाम।
जहाँ गली-गली में फिरती मीरा करती कीर्तन-गान॥

कालिदास का देश यही है, है वेद व्यास का ठाम।
है बालमीकि की जन्म-भूमि, गौतम-गाँधी का धाम।
जहाँ घर-घर में रामायण-गीता, घट-घट में भगवान॥

सुख प्राप्ति के पांच साधन

- ***दिमाग सदा ठंडा रखें।***
- ***जबान सदा मीठी रखें।***
- ***समय की कदर करें।***
- ***भविष्य के लिए बचत करें।***
- ***पांव सदा जमीन पर रखें।***

धर्म वर्तमान का

लेखक—विवेकदास

कुछ दिन पहले मैं ट्रेन में सफर कर रहा था। हमारी सीट के सामने वाली सीट में एक सज्जन बैठे थे। उन्होंने कहा—महाराज, क्या आपने घर-परिवार सब छोड़ दिया है। मैंने कहा कि ऐसा तो नहीं है। हम लोग भी घर में ही रहते हैं। हमारा भी समाज है, परिवार है। फिर उसने पूछा कि आपकी शादी हुई है कि नहीं? मैंने कहा—"नहीं" तो उसने कहा—"हां, आज यहां जितना आप त्याग किये हैं वहां आपको सैकड़ों गुना अधिक होकर मिलेगा। जिन चीजों को आप यहां छोड़ दिये हैं वहां आपको खूब अधिक मिलेगा।" मैंने कहा "नहीं भैया, वहां कुछ पाने की लालसा से हमने नहीं छोड़ा है, बल्कि वर्तमान में हमें ग्रहण करके जीने की अपेक्षा त्यागपूर्वक रहने में ज्यादा सुकून और शांति लगी इसलिए छोड़ा है।"

उस सज्जन की बात सुनकर मुझे हंसी आ गयी! क्या अद्‌भुत लोगों की धारणा और मान्यता होती है। दान की महिमा शायद इसीलिए बढ़ी है कि यहां जो दोगे उसका हजार गुणा होकर अगले जन्म में मिलेगा। इसी धारणा को दृढ़ करके धार्मिक लोग सामान्य जनता से धन ऐंठते हैं। पंडित, मौलवी, पुजारी, महात्मा सभी इसी मान्यता के आधार पर अपना उल्लू सीधा करते हैं। आम जनता को बाद में कुछ मिले या न मिले उनको तो आज ही मिल जाता है।

वैसे देखा जाये तो अधिकतम धार्मिक मत वर्तमान की अपेक्षा अगले जीवन या अगले भव को अच्छा बनाने के लिए उपाय और संयम-साधना बताते हैं। धर्मों (मतों) में विविध प्रकार के क्रियाकाण्ड भी उसी अगले जीवन के लिए ही है। यज्ञ, हवन, पूजा, तीर्थ स्नान, दान, व्रत, संयम आदि सब कुछ आगे जीवन के लिए किया जाता है। कोई मर गया है तो पिंडोदक आदि क्रिया या धार्मिक अनुष्ठान भी उनके आगे जीवन के लिए किया जाता है। उनको कुछ प्राप्त होता है या नहीं होता है, यह अलग बात है।

सद्‌गुरु श्री पूरण साहेब जी ने कहा है—

वर्तमान में बरतो भाई। भूत भविष्य को देहु बहाई॥

वर्तमान हमारे सामने है, न भूत है न ही भविष्य है। वर्तमान के आधार पर ही भविष्य का निर्माण होता है। वर्तमान की उपेक्षा करके हम भविष्य को उज्ज्वल कैसे बना सकते हैं। वर्तमान यह हमारा जीवन है। धर्म का अनुष्ठान, संयम और साधना वर्तमान जीवन को सुखमय और सुन्दर बनाने के लिए होना चाहिए न कि अगले भव को।

यदि हम वर्तमान के जीवन को फोकस कर वर्तमान में शांति और सुकून के लिए कार्य करें तो अधिकतम धार्मिक मान्यताएं ऐसे ही उड़ जायेंगी। मनुष्य स्वर्ग-नरक और ईश्वर-परमात्मा की मान्यताओं में पड़कर वर्तमान जीवन की उपेक्षा करता है और कभी-कभी तो इनके लिए अन्य लोगों और प्राणियों की बलि तक चढ़ा देता है और सोचता है कि इससे उसको स्वर्ग मिलेगा और परमात्मा खुश होगा।

एक बार एक मेले में एक तपस्वी बाबा से मुलाकात हुई। मैंने उनको प्रणाम किया और पूछा "बाबा! आप इतनी घोर तपस्या क्यों कर रहे हैं?" तो उन्होंने कहा—"परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए और उसके लोक में जाने के लिए।" अब इतनी प्रबल भावना कि कुछ कहा नहीं जा सकता था।

निश्चित ही हमारा जीवन शून्य से खड़ा नहीं हुआ है और न ही शून्य ही हो जायेगा। इसके पहले भी कुछ था और आगे भी कुछ होगा। वर्तमान में मनुष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभाव, गुण, कर्म, प्रवृत्ति और स्थिति का समाधान बिना पूर्व जीवन के स्वीकार के संभव नहीं है।

जड़ तत्त्वों और चेतन के मेल से यह जीवन खड़ा है। दोनों तत्त्व अनादि हैं और अनंत (अंत रहित) भी। इस अनादि काल के जगत में आज हम हैं, तो पहले भी रहे होंगे। जैसे एक पदार्थ के नष्ट होने से पदार्थ के उन्हीं तत्त्वों से पुनः दूसरे पदार्थ का निर्माण हो जाता है ठीक वैसे ही जीव भी एक शरीर को छोड़ने के पश्चात दूसरा जीवन धारण करता है। हर बात को केवल तर्क के

आधार पर ही नहीं समझा जा सकता क्योंकि केवल तर्क के आधार पर तो सामने जो वस्तु पड़ी हो, उसे भी असिद्ध किया जा सकता है। जिसके पास शब्द शक्ति और तर्क शक्ति ज्यादा होती है वह दूसरों के सिद्धान्त और विचार को काट देता है। तर्क तो हो पर वह कुतर्क न हो। विवेकपूर्ण तर्क के साथ श्रद्धा से वास्तविकता को समझा जा सकता है।

जड़ और चेतन प्रत्यक्ष हैं। जड़ में जड़ात्मक शक्ति है और चेतन में चेतनात्मक (ज्ञान) शक्ति है। इन दोनों के संयोग से जीवन खड़ा होता है। चेतन के न रहने पर जड़ शरीर जड़ ही हो जाता है और कुछ ही समय में नष्ट भी हो जाता है। हमें हमारे जीवन में जो भी सुख या दुख प्राप्त होता है। उसके लिए हम स्वयं ही जिम्मेदार होते हैं। कुछ कर्मों के फल तो तत्काल ही मिल जाते हैं किन्तु कुछ कर्म जो हम पहले किये हैं वे परिपाक होकर हमारे सामने आते हैं। हमें लगता है कि हमने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं है तो फिर हमारे जीवन में दुख क्यों आ रहे हैं, लेकिन वह होता है अपने कर्मों का ही परिणाम।

भूतकाल में जो कुछ हुआ अच्छा चाहे बुरा, उस पर हमारा कोई वश नहीं है। हां, वर्तमान में हम अपने क्रियमाण में जागरूकता लाकर अपने को गलत कर्मों से बचा सकते हैं और आगे के लिए अच्छा कर सकते हैं। आगे से तात्पर्य अगला भव या अगला जीवन ही नहीं है अपितु इसी जीवन के बाकी के समय के लिए है।

जो भी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ध्यान, साधना, संयम, व्रत, सेवा, सत्संग आदि हैं इनसे आज वर्तमान में ही हमारा चित्त शुद्ध होता है और गहरी शांति का अनुभव होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, तृष्णा और भय आदि मानसिक विकार चित्त को चालते रहते हैं और हम पदे-पदे दुखी, चंचल और अशांत होते रहते हैं किन्तु आध्यात्मिक अनुष्ठान सेवा, सत्संग, साधना, ध्यान आदि द्वारा चित्त का परिमार्जन करते हैं, विकारों को धोते हैं तो चित्त ग्रंथिहीन और हल्का होता जाता है। और जो शांति और सुख प्राप्त होता है बड़ा ही अद्‌भुत होता है। चित्त जितना-जितना हल्का और शुद्ध होता जाता है उतना-उतना हम मुक्त होते जाते हैं। पूर्ण चित्त की शुद्धि से आज ही पूर्ण मुक्ति है।

कोई आत्मा और पुनर्जन्म मानता हो या न मानता हो या कोई अलग से ईश्वरीय सत्ता मानता हो या न मानता हो, सबके लिए यह बात अनुकरणीय है। क्योंकि वर्तमान जीवन हमारा प्रत्यक्ष है। हमारे चित्त में विकार है तो हम आंदोलित और अशान्त बने रहेंगे इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता। और जैसे ही चित्त शुद्ध होता जायेगा मानसिक अशांति दूर होती जायेगी और शांति आती जायेगी। यह काम केवल पूजा, पाठ, कीर्तन, हवन-तर्पण, तपस्या, व्रत, उपवास, तीर्थाटन आदि से संभव नहीं है और न ही अधिक धन-सम्पत्ति और भोग-ऐश्वर्य प्राप्त कर लेने में है। इसके लिए आत्मशोधन की आवश्यकता है और यह संयम, सेवा, सत्संग और साधना-ध्यान द्वारा ही संभव है।

अखिल जगत में जिस किसी को शांति लाभ लेना है उसे इसी पथ पर लगकर ही लाभ मिल सकता है। यदि हम इस जीवन की सच्चाई को स्वीकार करें और जीवन लाभ के लिए काम करना शुरू करें तो हम तो सुखी और शांत होंगे ही औरों को भी इसके लिए सद् प्रेरणा प्राप्त होगी और वे भी इस दिशा में आगे चल सकेंगे।

कहने का तात्पर्य है कि आज जो भी हम धर्म-कर्म करेंगे वह हमें अगले जन्म में प्राप्त होंगे यह अधिक भावुकता वाली बात है। यदि हम वर्तमान में कुछ सेवा, सत्संग, साधना आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हैं और उससे हमारा चित्त शुद्ध होता है, ग्रंथिहीन होता है तो आज ही हम शांति का अनुभव करते हैं। और यह ही जीवन का फल है। हम वर्तमान को नजरअंदाज करके यदि अगले जन्म के लिए काल्पनिक पट बुनते रहे तो यह अति भोलापन होगा। आज वर्तमान में हम अपने जीते जी मुक्ति और शांति का काम करें। यदि हमारा आज अच्छा है तो आगे भी अच्छा होगा।

जाको दर्शन इत्त है वाको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत्त नहीं वाको इत्त न उत्त॥

जो आज स्वर्ग में है वह कल भी स्वर्ग में होगा और जो आज मुक्त है वह कल भी मुक्त होगा। जो आज स्वर्ग की अनुभूति नहीं कर पा रहा है, आज मुक्त नहीं है वह अगले जन्म में स्वर्ग या मुक्ति स्थिति में कैसे हो सकता है! ❑

व्यवहार वीथी

जीवन जीने की कला

एक प्रसिद्ध कहानी है। दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर जब घरमालकिन ने दरवाजा खोला तो देखती है कि तीन अजनबी बाहर खड़े हैं। परिचय पूछने पर एक ने कहा—मैं प्रेम हूं। दूसरे ने कहा—मैं धन हूं और तीसरे ने कहा—मैं यश हूं। घर-मालकिन ने तीनों का स्वागत करते हुए अंदर आने को कहा तो उन तीनों ने कहा—हम तीनों एक साथ नहीं रह सकते। आप हम तीनों में किसी एक को बुला सकती हैं। उनकी बात सुनकर घर-मालकिन ने घर के सदस्यों से राय लेकर उत्तर देने की बात कही। घर में राय लेने पर घर-मालिक ने धन को बुलाने की बात कही, क्योंकि धन रहने पर सुविधापूर्वक जीवन जीने में सरलता होती है। पुत्र ने यश को बुलाने की बात कही, क्योंकि यश-कीर्ति से ही घर-परिवार की प्रतिष्ठा बढ़ती है। पुत्रवधू ने कहा—मां, मेरी समझ से आप प्रेम को बुला लें, क्योंकि प्रेम के अभाव में न धन सुख देगा न यश; जबकि आपस में प्रेम होने पर विवाद-कलह से बचकर थोड़ी संपत्ति में भी सुखपूर्वक जीवन जीया जा सकता है। पुत्रवधू की बात सबको पसंद आयी और घर-मालकिन ने बाहर जाकर प्रेम को अंदर आने को कहा। घर-मालकिन देखती है कि प्रेम के पीछे-पीछे धन और यश भी चले आ रहे हैं। पूछने पर धन और यश ने कहा—यदि तुम हम दोनों में से किसी को बुलाती तो एक ही आता, दो बाहर से लौट जाते, परन्तु तुमने प्रेम को बुला लिया इसलिए हम दोनों भी साथ आ गये, क्योंकि हम दोनों वहीं रहते हैं जहां प्रेम रहता है।

इस कहानी का सार इतना ही है कि प्रेम के अभाव में न धन सुख देगा न यश और प्रेम के अभाव में न धन स्थिर रहेगा न यश। प्रेम के अभाव में ही स्वार्थ और अहंकार दोनों बढ़ते चले जाते हैं और जहां स्वार्थ तथा अहंकार घर बनाकर बैठे हैं वहां विवाद, कलह, कटुता, ईर्ष्या, द्वेष को बढ़ना ही है और जहां ये सब हैं वहां कोई सुख-शांतिपूर्वक कैसे जी सकता है भले ही वह कितनी भी धन-संपत्ति के मालिक क्यों न हो। प्रेम के अभाव में दो व्यक्ति भी सुखपूर्वक एक साथ नहीं रह सकते जबकि प्रेम होने पर दस-बीस व्यक्ति भी बड़े आराम के साथ छोटी जगह में भी सुखपूर्वक एक साथ रह सकते हैं। प्रेम वस्तुओं के अभाव को खटकने नहीं देता जबकि स्वार्थ और अहंकार में वस्तुओं की अधिकता में भी सदैव यह खटक बनी रहती है कि जैसा और जितना चाहिए मुझे नहीं मिल रहा है। इसीलिए कहा गया है—प्रेम जीवन का सार है, जीवन का अमृत रसायन है और प्रेम जीवन को स्वर्गमय बना देता है। प्रेम के बिना सब कुछ सूना एवं व्यर्थ है।

प्रेम दिल की धड़कन है। किसी से निस्स्वार्थ-निष्छल प्रेम पाकर किसका मन प्रसन्न नहीं होता। प्रेम देने वाले को भी खुश रखता है और पाने वाले को भी। प्रेम पराये एवं अपरिचित लोगों को भी अपना बना लेता है। प्रेमपूर्वक कही हुई बात दिल में उतर जाती है और प्रेमपूर्वक दी हुई साधारण वस्तु भी मूल्यवान बन जाती है। इसीलिए तो शबरी के बेर और विदुर के घर के साग की आज भी चर्चा और प्रशंसा होती है।

दुनिया में ऐसा कौन व्यक्ति है जो दूसरों से प्रेम न चाहता हो और दूसरों से प्रेम पाकर जिसका मन प्रसन्न न होता हो। परन्तु प्रश्न यह है कि दूसरों के लिए अपने मन में प्रेम कैसे उत्पन्न हो तथा कैसे बना रहे! सबसे पहले यह समझना होगा कि प्रेम में वस्तु का मूल्य-महत्त्व नहीं होता, किन्तु व्यक्ति का, मनुष्य का मूल्य-महत्त्व होता है, वस्तु की प्रधानता नहीं, अपितु व्यक्ति-मनुष्य की प्रधानता होती है। वस्तु की प्रधानता होने पर व्यक्ति गौण हो जाता है और प्रेम गायब हो जाता है। यदि अपने मन में दूसरों के लिए प्रेम बनाकर रखना चाहते हैं तो वस्तुओं को महत्त्व-प्रधानता न देकर व्यक्ति को, व्यक्ति के साथ संबंध को महत्त्व एवं प्रधानता दें।

यदि दूसरों के लिए अपने मन में प्रेम बनाये रखना चाहते हैं तो यह कभी न सोचें कि उन्हें मेरे लिए क्या करना चाहिए और वे मेरे लिए क्या कर रहे हैं तथा वे

मुझे क्या दे रहे हैं, उनसे मुझे क्या मिल रहा है, किन्तु सदैव इस पर ध्यान दें कि मैं उनके लिए क्या कर सकता हूं, क्या कर रहा हूं और उन्हें क्या दे सकता हूं। पाने की नहीं सदैव देने की बात सोचें। प्रेम में पाने की नहीं, देने की बात होती है और देकर भूल जाना होता है। याद व्यापारी और स्वार्थी रखता है प्रेमी नहीं। जहां पाने की बात आती है वहां प्रेम गायब हो जाता है और स्वार्थ पनपने लगता है। सच तो यह है कि स्वार्थ बढ़ने-पनपने पर ही पाने की इच्छा होती है, प्रेम में नहीं।

प्रेम में सेवा होती है, समर्पण होता है। और सेवा-समर्पण के लिए अपने स्वार्थ तथा अहंकार का त्याग आवश्यक होता है। प्रेमी व्यक्ति सदैव विनम्र होता है। उसके हृदय में दया-करुणा का झरना प्रवाहित होता रहता है। वह दूसरों के दुखों को देखकर द्रवित हो जाता है और यथासंभव उस दुख को दूर करने में सहयोग करता है। यदि सहयोग नहीं भी कर पाता तो सच्चे दिल से यही कामना करता है कि उसका दुख जल्दी से जल्दी दूर हो। प्रेम में दूसरों के सुख-सुविधा-उन्नति को देखकर ईर्ष्या-जलन नहीं अपितु प्रसन्नता होती है। ईर्ष्या-जलन तो मन का कालुष्य है और जहां मन में ही कालुष्य है वहां प्रेम के लिए स्थान कहां होगा। सच्चे प्रेम में किसी के लिए भी द्वेष-शत्रुता का भाव नहीं रहता। उसके लिए दुनिया में कोई शत्रु होता ही नहीं, भले ही दूसरा उसे शत्रु मानता हो, परंतु उसके मन में उसके लिए भी क्षमाभाव एवं कल्याण-कामना होती है। इसीलिए तो संत ईसा ने उन्हें क्रास पर लटकाने वालों के लिए प्रार्थना करते हुए कहा था—हे प्रभु! इन्हें क्षमा करना, ये नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। इसी प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने रसोइया को, जिसने उन्हें जहर दिया था, बुलाकर रुपयों की थैली देते हुए भाग जाने को कहा था।

मन में प्रेम होने पर किसी के लिए भी दोषदृष्टि नहीं रह जाती, किन्तु गुणदृष्टि रहती है। सच्चे प्रेम का लक्षण है प्रिय में दोष दिखाई ही नहीं देना। इसका अर्थ यह नहीं कि प्रेमी अपने प्रिय के दोषों का समर्थन करता है। वह किसी के भी दोष का समर्थन नहीं करता, किन्तु उसके साथ प्रेमपूर्ण सुंदर व्यवहार कर उसके दोषों को मिटाने का प्रयास करता है। मन में सच्चा प्रेम होने पर किसी के लिए घृणा रह नहीं जाती। खास बात है दोषदृष्टि मिटकर गुणदृष्टि होने पर ही प्रेम टिकता है और पनपता है। प्रेम होने पर किसी से गलत व्यवहार पाकर भी उसके साथ सुंदर व्यवहार ही किया जाता है। जैसे मां अपने छोटे बच्चे की सारी गलतियों को नजरअंदाज कर और क्षमा कर उसे निष्छल मन से प्यार करती है और उसे अपने हृदय से लगा लेती है। प्रेम का लक्षण है प्रिय से गलत व्यवहार पाकर भी उसे याद नहीं रखा जाता और सुंदर व्यवहार के लिए हृदय से आभार व्यक्त किया जाता है।

यदि आप यह चाहते हैं कि मेरे मन में घर-परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के लिए प्रेम बना रहे तो उनके दोषों-गलतियों पर ध्यान न देकर अपनी दृष्टि सदैव उनके गुणों-अच्छाइयों पर रखें। आप यह अनुभव करेंगे कि आपके मन में प्रसन्नता-खुशी की लहरें उठ रही हैं और आप यहीं पर स्वर्ग-सुख का आनंद ले रहे हैं। यदि घर-परिवार के सदस्यों में कभी कोई दोष-गलती दिखाई पड़ जाये तो उसके लिए उनकी निंदा-बुराई न करें। किन्तु उनकी अच्छाइयों के लिए, उनके अच्छे कामों के लिए उनकी प्रशंसा अवश्य करें। निंदा-बुराई किसी को प्रिय नहीं है। इससे लाभ तो किसी का नहीं होता, किन्तु वक्ता-श्रोता सबका मन खराब अवश्य होता है। कहा जाता है कि किसी की निंदा करने से उसके बुरे कर्मों का फल अपने ऊपर आ जाता है और अपने अच्छे कर्मों का फल उसके ऊपर चला जाता है तथा किसी की प्रशंसा करने से उसके अच्छे कर्मों का कुछ फल हमें भी मिल जाता है। खास बात है मन में प्रेम होने पर निंदा होगी ही नहीं क्योंकि उसमें बुराई-गलती दिखाई ही नहीं पड़ती। हां, प्रशंसा अवश्य की जाती है क्योंकि प्रिय के सद्गुण-अच्छाई ही दिखाई पड़ते हैं।

प्रेम में दया तो होती ही है क्षमा भी अपने आप आ जाती है। प्रेम हो और क्षमा न हो यह संभव ही नहीं है। जब कोई पराया है ही नहीं तब किसके प्रति क्रोध और किससे बदला लेने की भावना और प्रवृत्ति। किसी के

प्रति क्रोध और किसी से बदला लेने की बात तभी आती है जब अहंकार में ठेस लगती है और जब हृदय में प्रेम है तब वहां अहंकार की गुंजाइश कहां है। जैसे अंधकार और प्रकाश दोनों एक समय में एक जगह नहीं रह सकते वैसे प्रेम और अहंकार दोनों एक साथ एक जगह नहीं रह सकते। इसीलिए तो सद्गुरु कबीर कहते हैं—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुंइ धरे, तब पैठे घर माहिं॥

सारी सुविधाओं के होते हुए और साथ-साथ रहते हुए भी लोगों का मन उदास क्यों है, क्यों वे एक दूसरे से खिंचे-खिंचे से रहते हैं, क्योंकि वे आवश्यकतावश, मजबूरीवश, सामाजिक मर्यादा एवं शिष्टाचारवश एक साथ रह तो रहे हैं, किन्तु उनमें एक दूसरे के लिए प्रेम नहीं है। वहां सब अपने-अपने स्वार्थ-पूर्ति को श्रेय दे रहे हैं। सब एक दूसरे से प्रेम पाना तो चाहते हैं किन्तु देना नहीं जानते। प्रेम है एक दूसरे की भावनाओं को समझना और आदर देना, कद्र करना। प्रेम है स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख पहुंचाने की भावना और प्रयास। यहां प्रेमी प्रिय की खुशी के लिए अपनी खुशी का त्याग कर देता है।

ऐसा निस्स्वार्थ और निष्छल प्रेम जहां होता है वहां किसी के मन में किसी प्रकार के अभाव की खटक कैसे हो सकती है! वहां तो सबका मन तृप्त, संतुष्ट एवं प्रसन्न रहता है। और मन की तृप्ति, संतुष्टि एवं प्रसन्नता ही तो सबसे बड़ा धन है। इस धन के आगे सारे धन तुच्छ हैं। जिस परिवार में एक दूसरे के लिए निष्छल-निस्स्वार्थ प्रेम है, सेवा और समर्पण है, दूसरों के विचारों-भावनाओं का आदर है, स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख-सुविधा पहुंचाने का भाव है वहां बाहरी धन तो बढ़ता ही है, यश भी बढ़ता है। अतः मन में, जीवन में, घर-परिवार में प्रेम को प्रमुख स्थान दें, धन और यश पीछे-पीछे चले आयेंगे। मन, जीवन, घर-परिवार सब स्वर्गमय बन जायेंगे।

—धर्मेन्द्र दास

कहानी

सच्चा सौन्दर्य

लेखक—श्री लखन प्रतापगढ़ी

सामली आज दसवीं बार रिजेक्ट हुई तो पिता देवी शंकर की चिन्ता और बढ़ गयी। उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि उसके लिए वर ढूंढ़ने में उन्हें इतनी जिल्लत झेलनी पड़ेगी। सामली का परिवार में आना बहुत शुभ था। उसके जन्म के कुछ ही दिन बाद देवी शंकर की रेलवे में नौकरी पक्की हुई थी। लोग कहते थे कि इसका रंग भले सांवला है, यह परिवार का सौभाग्य लेकर आयी है। लक्ष्मी है यह।

देवी शंकर को रात में नींद नहीं आयी। करवट पर करवट बदलते रहे। जब तीन बज गये तो पत्नी उर्मिला से रहा न गया। वह बोल पड़ी, "सो जाओ। अब क्यों परेशान हो। जब मैं कह रही थी कि इण्टर करने के बाद कोई ठीक-ठाक लड़का देखकर इसे निपटा दो तो तुम्हारे ऊपर उसे पढ़ाने का भूत सवार था। अब आ गयी परेशानी सिर पर... झेलो... क्यों हाय-हाय कर रहे हो।"

"चुप हो जाओ उर्मिला। जले पर नमक मत छिड़को। अपनी सामली में कमी ही क्या है? बी.ए. कम्पलीट है। सिलाई, कढ़ाई आदि में निपुण है। पाककला में बड़े-बड़े बावर्ची उसके आगे पानी भरें। बस थोड़ा रंग से मार खा जाती है। कोई न कोई तो पसन्द करेगा उसे।" देवी शंकर ने उर्मिला से कहा।

"कौन पसन्द करेगा उसे? देखते ही देखते तीस साल निकल गये। इतनी उम्र का लड़का कहां बैठा

मिलेगा? जो उम्र वाले हैं भी, उनके नखरे बहुत हैं। कौए भी अब हंसिनी की चाह रखते हैं। बे सूरत-शक्ल वालों को भी अब इन्द्रपरी चाहिए।''

उर्मिला की बात को बीच में ही काटकर देवी शंकर खीझते हुए बोले, ''चुप हो जाओ भाग्यवान! भगवान के लिए चुप हो जाओ। सोने दो मुझे।''

''चुप तो बहुत रही। आपने मुझे सुना ही कब? सुने होते तो आज ये दिन न देखने पड़ते। कमली भी पचीस साल की हो गयी है। हमें उसे भी देखना है। फिर दो लड़के भी तो हैं। उनकी पढ़ाई-लिखाई का खर्च। अब तो हमें सामली की शादी हर हाल में निपटानी ही होगी। तुम इसे अखबार में क्यों नहीं निकलवा देते। खुदा न खास्ता कोई रिश्ता मिल ही जाये।''

उर्मिला के इस सुझाव में दम था। देवी शंकर ने निश्चय किया कि वे सुबह अखबार के दफ्तर में जाकर सामली के लिए वैवाहिक विज्ञापन निकलवायेंगे।

अगले दिन जब नवयुवक सूरज सिंह ने अखबार के वैवाहिक विज्ञापन वाले पृष्ठ पर सामली के बारे में पढ़ा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा। सामली अभी तक अविवाहित है। पढ़ाई में तो ठीक थी। शायद कहीं जॉब नहीं लगी। सरल स्वभाव, न अधिक बोलना, न कोई लप्प-झप्प। ऐसी भली लड़कियां तो बहुत कम मिलती हैं।

यह सोचते-सोचते सूरज के मन में सामली के प्रति प्रेम का भाव जागृत हो उठा। उसे पुरानी बातें याद आने लगीं। कालेज के दिनों में वे साथ-साथ पढ़ते थे। नोट्स तथा पुस्तकों का आदान-प्रदान उनमें आम बात थी।

सूरज दोनों हाथों से अखबार पकड़े हुए घर के बरामदे में आया। वहां बैठे अपने पापा मानिक चन्द तथा मम्मी सुनयना के सामने अखबार का वही पृष्ठ रखते हुए कहा, ''मम्मी, इसमें एक लड़की के बारे में शादी का विज्ञापन छपा है। इसके साथ मैंने तीन साल बी.ए. की पढ़ाई किया है। बड़े अच्छे से जानता हूं इसे। पिता जी रेलवे में क्लर्क हैं। मैं शादी इसी से कर लूं तो क्या हर्ज है?''

''ठीक है बेटा, पर ऐसे मामलों में जल्दीबाजी ठीक नहीं। शादी-विवाह कोई गुड्डे-गुड़िया का खेल नहीं होता। पहले खूब जांच-परख लो। रूप-रंग, चाल-ढाल, कद-काठी सब मेल खानी चाहिए।'' सूरज की मां सुनयना ने उसे समझाते हुए कहा। बेटे की मनोदशा देखकर मानिक चन्द जी बोल पड़े, ''बेटा! थोड़ा धैर्य रखो। अभी तो तुम्हारी सिविल की तैयारी ही चल रही है। सेलेक्शन हो जाये। चार पैसे कमाने लगो तो शादी-विवाह के बारे में सोचो।''

सूरज अपने पिता से सवाल-जवाब करना उचित नहीं समझा। वह अपने कक्ष में चला गया। उसके मन में न जाने क्यों सामली के प्रति आकर्षण बढ़ता ही जा रहा था। वह खोया-खोया-सा रहने लगा। वह जहां कहीं बैठता सामली की ही तारीफ करता।

मानिक चन्द डिग्री कालेज में मनोविज्ञान के शिक्षक थे। वे सूरज की मनोदशा ताड़ गये। अगले दिन सामली के पिता से फोन पर बात की और पत्नी सुनयना के साथ उसके घर पहुंच गये। सामली का साक्षात्कार लिए। सब ठीक था परन्तु सुनयना को सामली पसन्द नहीं आयी। कारण उसका सावला रंग।

घर आकर सुनयना ने सूरज को बहुत समझाया और कहा ''देख बेटा! मैं गेहूं में गण्डो नहीं मिलाना चाहती। लड़की साफ नहीं है। टोला-मोहल्ला वाले थूकेंगे, कहेंगे कि सुनयना ने बेटे को बोर दी। यही कलूटी मिली थी इसे। जरूर दहेज पर गयी होगी। हमें यह रिश्ता कतई पसन्द नहीं है।'' मानिक चन्द भी नहीं चाहते थे कि कोई सांवली लड़की आकर उनके परिवार को बदरंग करे। किन्तु सूरज की जिद के आगे उनकी एक न चली।

आखिरकार सामली मानिक चन्द के घर बहू बन कर आ गयी। उसके स्वभाव से सभी खुश थे। वह सब का ध्यान रखती। समय से नाश्ता बनाती। वह पाक कला में तो निपुण थी ही। सूरज की तो जिन्दगी ही बदल गयी थी। वह सामली का सहयोग पाकर अपनी पढ़ायी में और तरक्की करने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका सिविल सेवा में सेलेक्शन हो गया।

उसकी पोस्टिंग असम राज्य में जिलाधिकारी के पद पर हो गयी।

सूरज की ज्वायनिंग हो गयी। वह अभी सामली को साथ न ले जा सका। उसके चले जाने से सामली अकेली हो गयी। सुनयना का भाव नहीं बदला था। वह आये दिन सामली को बात सुनाती। कहती, "आते ही इसने मेरे बेटे को मुझसे दूर कर दिया। पता नहीं कैसा होगा वहां? मोहल्ले में घूम-घूम कर मैं कहा करती थी कि चांद-सा मुखड़े वाली बहू लाऊंगी। पूरे मोहल्ले में सबसे सुन्दर रहेगी मेरी बहू। अब क्या मुह दिखाऊंगी। सोने की जगह मुझे कोयला जो मिल गया।"

सामली सुनयना की बातों को सुन लेती। अपने मायके में भी न बताती। दिन भर चूल्हा-चक्की साफ-सफाई में व्यस्त रहती। उसे सहारा देने वाला कोई न था। बैठ जाती तो डांट पड़ती। एक दिन उसने हिम्मत जुटा कर सुनयना से कहा, "मां जी! मैं सोचती हूं कि सागर बाबू की शादी हो जाये। देवरानी आ जाये तो मुझे भी कुछ आराम मिले।"

सुनयना का छोटा लड़का सागर स्कूल में शिक्षक हो गया था। ट्रेनिंग के दौरान उसे एक लड़की पसन्द आ गयी थी। वह काफी स्मार्ट और बड़े घर की थी। पिताजी एक कम्पनी में मैनेजर थे। वह हमेशा शहर में रही थी। घर के कामों से उसका दूर-दूर तक कोई रिस्ता नहीं था।

शादी हो गयी। दहेज में ढेर सारा सामान मिला। नई बहू का रूप-रंग देखकर सुनयना निहाल थी। इस बार उसे मन की बहू मिली थी। वह मोहल्ले में ऐसे चलती जैसे आसमान से तारे तोड़ लाई हो। सब को बताती, "मेरी छोटी बहू इन्द्रपरी है, इन्द्रपरी। बड़ी बहू तो उसके पैर की धोवन भी नहीं है। पता नहीं कहां की धरी धराई थी जो मुझे मिल गयी वह।"

सूरज को भाई की शादी के लिए केवल पन्द्रह दिन की छुट्टी मिली थी। जो देखते ही देखते निकल गयी। उसने शाम को मम्मी-पापा से कहा, "अगर आप लोग अनुमति दें तो मैं सामली को अपने साथ ले जाऊं। अब तो सागर की भी शादी हो गयी है। यहां आप लोगों को कोई दिक्कत नहीं है।"

सुनयना ने सूरज की बात का झट से समर्थन कर दिया। वह नहीं चाहती थी कि सामली अपनी कलूटी सूरत मोहल्ले वालों को दिखाये। उसकी इज्जत का सवाल जो था। उसने सोचा कि न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।

अगले दिन ही सूरज तथा सामली असम जाने वाली ट्रेन पकड़ लिए।

सामली के जाते ही छोटी बहू रागिनी अपना रंग दिखाने लगी। उसने सुनयना से स्पष्ट कह दिया, "मां! मुझसे घर का काम नहीं होगा। चौका-बर्तन, झाड़ू-पोंछा के लिए नौकरानी रख लो। हमारे मायके में ये काम नौकर ही किया करते हैं।"

यह सुनकर सुनयना के पावों तले जमीन खिसक गयी। उसका सारा घमण्ड चूर हो गया। जिसके ऊपर उसे नाज था वही आज उससे ऊंचे स्वर में बात कर रही थी। उसे अपनी उम्मीदों पर पानी फिरता नजर आ रहा था।

सुनयना पुराने ख्याल की महिला थी। वह अपने घर में कभी नौकरानी रखने के पक्ष में न थी। अछूत जाति के लोगों को अपने घर में बुलाना उसे गवारा नहीं था। बेधर्म नहीं होना था उसे। अतः वह अपने से झाड़ू-पोंछा करती, नाश्ता बनाती, बर्तन तथा कपड़े साफ करती। रागिनी आये दिन बीमार रहती। कभी सिर दर्द तो कभी पेट दर्द लगा ही रहता। सुनयना को उसकी भी सेवा करनी पड़ती। कभी-कभी तो उसके कपड़े भी उसे ही साफ करने पड़ते। वह किसी से कह भी नहीं सकती थी क्योंकि पहले ही वह पूरे मोहल्ले में उसका गुणगान कर चुकी थी। अब किस मुंह से कहे कि रागिनी अच्छी नहीं है।

मानिक चन्द से सुनयना की परेशानी देखी न जाती। उन्होंने नौकरानी रखने की बात सोची भी तो कोई ढंग की मिली नहीं। मिली भी तो अछूत जाति की जो सुनयना को पसन्द न थी।

रागिनी को अपने गोरे रंग पर बहुत घण्मड था। वह दिन भर शीशे के सामने सजती-संवरती। सागर को भी न सेटती। उसके ऊपर भी अपना हुकुम चलाती। उसके

सारे पैसे शॉपिंग और दवा में ही चले जाते। सागर को मम्मी की परेशानी देखी न जाती। किन्तु करे तो क्या करे। रागिनी के मम्मी-पापा का कहना था कि "हमारी बिटिया काम नहीं करेगी। काम करवाना हो तो हमारे पास भेज दो।"

एक दिन जब सुनयना घर की सीढ़ियां साफ कर रही थी तभी उसका पैर फिसल गया। ऐसी गिरी कि कूल्हे की हड्डी ही खिसक गयी। अस्पताल में इलाज चला। घर आयी तो उसे डॉक्टरों ने काम करने से मना कर दिया था। अब उसे रागिनी का ही सहारा था। वह आठ बजे सो कर उठती। बड़ी मुश्किल से चाय बना कर देती। सागर बिना खाये ही स्कूल जाता। उसे दोपहर में होटल की शरण लेनी पड़ती। समय से भोजन न मिलने के कारण मानिक चन्द का भी स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था।

उधर सामली को जब सुनयना की चोट के बारे में पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। उसने सूरज से तुरन्त घर चलने के लिए आग्रह किया। किन्तु सूरज को कुछ जरूरी काम निपटाने थे। मन्त्री जी का दौरा होने वाला था। अतः वह नहीं आ सकता था। उसने सामली को भी समझाया, "देखो प्रेगनैन्सी रिपोर्ट के अनुसार अभी तुम्हारा पांचवां महीना चल रहा है। ऐसी हालत में कहीं अकेले जाना ठीक नहीं। मां जी से फोन पर बात कर लो। बाद में कभी छुट्टी मिलेगी तो साथ-साथ चलेंगे।" किन्तु सामली को मां की चिन्ता थी। वह सूरज की एक न सुनी। वह तत्काल में आरक्षण लेकर ट्रेन में बैठ ली।

घर पहुंचते ही सामली सुनयना की सेवा में लग गयी। समय से नाश्ता बनाती। सुनयना के लिए पानी गरम करती। दवाइयां खिलाती और उसे उठाती-बैठाती। रागिनी को इन सब से कुछ लेना-देना न रहता। वह अपनी साज-सज्जा में ही व्यस्त रहती।

सुनयना के रूढ़िवादी विचार अभी भी वैसे के वैसे थे। वह सामली की सेवा से एक क्षण के लिए खुश होती किन्तु दूसरे ही क्षण उसे उसका काला चेहरा नाराज कर देता। सामली के प्रति उसका प्रेम जागता लेकिन स्थायी न रह पाता। उसका मन उसे बहू के रूप में स्वीकार करने से बार-बार इन्कार कर देता।

समय बीतने के साथ सुनयना के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। सूरज को अकेले रहना मुश्किल हो रहा था। अतः सामली को पुनः असम जाना पड़ा।

सुनयना रागिनी के व्यवहार से तंग आ गयी थी। अब उसका गोरापन उसे काटने लगा था। वह कभी-कभी सोचती कि सामली ही अच्छी थी। सब का ख्याल तो रखती थी वह। उसकी समझ में आने लगा कि असली सौन्दर्य बहू के गुणों में होता है उसके गोरेपन में नहीं।

अब सुनयना काफी ठीक हो गयी थी। छड़ी के सहारे चल भी लेती थी। एक दिन वह बिस्तर पर लेटी थी तभी उसके सिरहाने रखे मोबाइल फोन की रिंगटोन बज उठी। उसने फोन उठाया तो उधर से सूरज की आवाज आयी, "मम्मी! आप दादी बन चुकी हैं। इस खुशी में मैं यहां एक फंक्शन रखना चाहता हूं। आप, पापा को साथ लेकर अगले हफ्ते आ जाइये। ट्रेन का टिकट मैं बुक करवा देता हूं।"

यह बात जब सुनयना ने सुनी तो वह फूले नहीं समायी। उसकी सारी चोट जैसे ठीक हो गयी हो। सामली के प्रति उसके हृदय में प्रेम प्रस्फुटित होने लगा। उसने यह खुशखबरी जब मानिक चन्द को बतायी तो वे भी बहुत खुश हुए और पोते का मुंह देखने के लिए बेताब होने लगे और असम जाने की तैयारी में जुट गये।

अगले हफ्ते मानिक चन्द और सुनयना जब स्टेशन पर पहुंचे तो सूरज तथा सामली उन्हें लेने आये। सामली को देखकर सुनयना फफक-फफक कर रो पड़ी। बोली "बहू, मुझे माफ करना। मैं तुम्हें समझ नहीं पायी। सच्चा सौन्दर्य तो व्यक्ति के व्यवहारों तथा आन्तरिक गुणों में होता है। मैं इसे गोरेपन में ढूंढ़ रही थी।" इतना कहते हुए सुनयना सामली को गले से लगा ली।

उधर नन्हा गोलू अपने दादाजी की गोद में किलकारियां मार रहा था। ❑

मानुष तेरा गुण बड़ा

लेखक—श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी

संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब का मौलिक ग्रंथ बीजक है। उसमें आपने कहा है—

मानुष तेरा गुण बड़ा, मांस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज॥

इस एक ही साखी में सद्गुरु कबीर साहेब ने गागर में सागर भर दिया है। उन्होंने यह नहीं कहा कि हिन्दू तेरा गुण बड़ा, भारतीय तेरा गुण बड़ा, पुरुष तेरा गुण बड़ा, किन्तु समस्त संकुचित विशेषणों को हटाकर उन्होंने क्रांतिकारी स्वर में कहा कि 'मानुष तेरा गुण बड़ा।'

संसार में आदमी, आदमी के रूप में जन्म लेता है। कोई भी आदमी हिन्दू के रूप में, मुसलमान के रूप में, ईसाई के रूप में, पारसी के रूप में, जैन के रूप में, बौद्ध के रूप में जन्म नहीं लेता है।

आप देखे होंगे, जन्म से किसी बच्चे के पास चोटी और जनेऊ नहीं रहता है, जन्म से कोई बच्चा खतना कराकर नहीं आता है और न जन्म से कोई बच्चा बपतिस्मा लेकर आता है। दुनिया के सभी देशों के बच्चे एक समान पैदा होते हैं। किसी बच्चे का जन्म हुआ हो और उसको लाकर एक जगह रख दिया जाये तो कोई उसको प्रमाणित नहीं कर सकता है कि यह अमुक परम्परा का बच्चा है।

आदमी, आदमी के रूप में जन्म लेता है किन्तु आज इस वैज्ञानिक युग में भी आदमी को आदमी नहीं कहा जा रहा है। आज आदमी को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, जैन और बौद्ध कहा जाता है जो सत्य तथ्य से बहुत दूर है। वास्तविकता यह है कि आदमी आदमी है। किसी कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है—

मैं हिन्दू के घर में जन्मा, हिन्दू कहलाया।
मुसलिम के घर में जन्मा मुसलिम कहलाया।
ईसाई के घर में जन्मा ईसाई कहलाया।
पर मानव के गर्भ से जन्मा, मानव न कहलाया।

आदमी मूलरूप में न हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है न और कुछ है। आदमी केवल आदमी है, यह एक वास्तविकता है। संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब की निगाह बहुत पैनी है। उन्होंने कहा है—'झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।' (बीजक)

हम वेदों में देखें। ऋग्वेद दुनिया की प्राचीनतम पुस्तक है। उसमें कहीं 'हिन्दू' शब्द नहीं है। उपनिषदों में देखें, उपनिषदों का प्रचार भारत के अलावा विश्व के अनेक देशों में भी हुआ है। किसी भी उपनिषद् में 'हिन्दू' शब्द नहीं है। शास्त्रों को देखें, जो दर्शन के ग्रंथ हैं। छह आस्तिक दर्शन माने गये हैं न्याय, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, योग और वेदान्त, लेकिन किसी भी शास्त्र में 'हिन्दू' शब्द नहीं है।

सद्गुरु कबीर साहेब की यह कितनी पैनी दृष्टि है। उनकी दृष्टि धर्म-सम्प्रदाय, मत-मजहब, वर्ण-वर्ग के परदे को चीर कर मनुष्य के मौलिक स्वरूप को देख लेती है और आदमी को उसके मूलरूप में प्रतिष्ठापित करना चाहती है। इसलिए उन्होंने कहा कि 'मानुष तेरा गुण बड़ा।' और केवल भारत में ही नहीं किन्तु पूरे विश्व में जहां भी, जो भी आदमी जन्मा है, अगर उसकी कोई विशेषता हुई है तो उसके गुणों के कारण हुई है, जन्म के नाते नहीं हुई है।

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न चा लिंगं न चा वयः' गुणवान के गुणों की पूजा होती है लिंग और वय की नहीं। 'आदमीयत है तो बुनियाद है हर खूबी की, हो न यह भी तो फिर धरा क्या है इंसा के पास।' अगर आदमी के पास आदमीयत न हो, इंसान के पास इंसानियत न हो, तो आदमी के पास और क्या रखा हुआ है!

मनुष्य की हड्डी का कोई गहना नहीं बनता है, चाम का कोई बाजा नहीं बनता है और मांस किसी काम में नहीं आता है। अगर इसमें मूल्यवान चीज कोई है तो

वह उसका सद्‌गुण ही है। सद्‌गुणों के ही नाते मनुष्य मूल्यवान होता है।

एक बार किसी राजा के एक मंत्री के मन में जिज्ञासा उठी कि राजदरबार में मेरा जो इतना बड़ा सम्मान होता है, यह मेरे ज्ञान के नाते होता है कि मेरी मानवता, आदमीयत, इंसानियत के नाते होता है?

उसके मन में कभी यह होता है कि मेरा मस्तिष्क बहुत तेज है, मैं बहुत कुछ जानता हूं, इसी के नाते सम्मान होता है। कभी दूसरे पहलू पर उसका ध्यान चला जाता कि बुद्धि के नाते मेरा सम्मान नहीं है किन्तु मेरे जीवन में जो पवित्रता है, सदाचार है, मानवता है इसी के नाते मेरा सम्मान हो रहा है। उसने सोचा कि जरा प्रयोग करके देखूं।

आप जो सुनते हैं और समझते हैं उसको जब प्रयोग करके जीवन में उतारते हैं तब आपको उसका पक्का बोध होता है। उसी को निःसंशय ज्ञान कहते हैं, अनुभव कहते हैं। हम शास्त्रों को पढ़ते हैं, उनकी बातों का जब अपने जीवन में प्रयोग करते हैं तब जीवन में अनुभव हो जाता है कि हां, शास्त्रों की बातें सही हैं।

राजदरबार से चलते समय, प्रयोग के तौर पर, मंत्री ने राज-खजाने से एक वस्तु उठा लिया। पहरेदार ने देखा किन्तु, 'मंत्री हैं', यह सोचकर कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

दूसरे दिन, घर जाते समय मंत्री राजकोष से फिर कोई वस्तु उठा लेते हैं। पहरेदार देखता है और अब सोचने लगता है कि राज-खजाना की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। मंत्री हो चाहे कोई भी व्यक्ति हो, राज-खजाना से उठाकर ले जाता है तो मुझे उसे रोकना चाहिए। ऐसा विचार किया किन्तु उसने कुछ कहा नहीं।

तीसरे दिन भी मंत्री महोदय, अपना कार्य पूरा करके, जब घर जाने लगे तो पहले की तरह फिर खजाने की ओर बढ़े और एक वस्तु उठा लिये।

पहरेदार सोचने लगा कि अगर इसी प्रकार एक-एक कर ये रोज वस्तु उठाने लगेंगे तो खजाना ही खाली हो जायेगा। मैं पहरेदार हूं, मेरी ड्यूटी है, मुझे राजदरबार में बताना चाहिए।

तीसरे दिन साहस करके पहरेदार राजा के सामने उपस्थित हुआ और सारी बात राजा से कह दिया कि महाराज, आपके मंत्री तीन दिनों से, चलते समय, खजाना में जाकर कोई न कोई वस्तु उठाकर अपने घर ले जा रहे हैं।

चौथे दिन राजदरबार में राजा जैसे ही बैठा, मंत्री महोदय भी पहुंच गये। उनकी शिकायत तो राजा को पहले ही मिल गयी थी। राजा ने मंत्री से पूछा—'मंत्री जी, क्या सचमुच आप तीन दिनों से खजाना से चोरी कर रहे हैं, वस्तु ले जा रहे हैं?'

मंत्री को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुझे तो कोई टोका नहीं फिर बात यहां तक आ कैसे गयी? कुछ देर सोचने के बाद वे समझ गये कि सारी बात पहरेदार ने बतायी है।

मंत्री ने कहा—हुजूर! बात सत्य है, मैं खजाने से वस्तु ले गया हूं।

जैसे ही मंत्री अपनी चोरी स्वीकार करते हैं, राजा कहता है कि मंत्री जी! आपको खजाने से चोरी के जुर्म में एक मास के लिए कठोर कारावास की सजा दी जाती है।

मंत्री ने स्वीकार किया और कहा कि महाराज, आपका दण्ड मुझे स्वीकार है किन्तु मेरे मन में एक प्रश्न उभर रहा था उसका मैं समाधान चाहता हूं।

राजा ने पूछा—'कौन-सा प्रश्न उभर रहा था?'

मंत्री ने बताया—मेरे मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि राजदरबार में जो मेरा सम्मान हो रहा है वह मेरे ज्ञान के कारण है कि मेरे आचरण के कारण से है? इसका समाधान मैं नहीं कर पा रहा था और इसी के समाधान के लिए मैंने प्रयोग किया है, खजाने से वस्तुएं उठाकर ले गया हूं। आपके खजाने की सभी वस्तुएं मेरे यहां सुरक्षित हैं तथा आपका दण्ड भी मुझे स्वीकार है।

राजा मंत्री की सफाई भरी बातें सुनकर प्रसन्न होता है और अपने दण्ड को वापस लेता है और कहता है कि आदमी का जो सम्मान होता है वह आदमी के सद्‌गुणों

के कारण, उसके आचरण के कारण होता है। कोई बहुत बड़ा डॉक्टर हो, बहुत बड़ा विद्वान हो, बहुत बड़ा राजनेता हो, अगर वह गलत कर्म करते पाया जायेगा तो वह जेल जाने का अधिकारी होगा। वह दण्ड से यह कहकर नहीं बच सकता है कि मैं तो बहुत बड़ा वकील हूं, बहुत बड़ा डाक्टर हूं, बहुत बड़ा राजनेता हूं।

आदमी क्या जानता है और क्या मानता है, इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि आदमी क्या करता है। अगर करना सही नहीं होगा तो आदमी का जीवन ठीक नहीं होगा, सफल नहीं होगा।

आपकी खुशी है, आपकी श्रद्धा है, आप चाहे जिस देवी-देवता की आराधना करें, चाहे जिस मंत्र का जाप करें, चाहे जिस प्रकार का कर्मकाण्ड करें, चाहे जिस प्रकार का कपड़ा पहनें, चाहे आप घर में रहें या वन में चले जायें, अगर आपका करना सही नहीं होगा तो आपको सुख और शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

हजारों वर्ष बीत गये महाराज श्रीराम के हुए, महाराज श्रीकृष्ण को, भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के हुए किन्तु लोगों के दिलों में आज भी वे बसे हुए हैं, क्योंकि उनके जीवन में सद्‌गुण थे। उन्हीं सद्‌गुणों के नाते वे सबके दिल में बसे हुए हैं। उन्हीं सद्‌गुणों के नाते श्रद्धालु समाज ने उनके नाम पर मंदिर बनाया, उनकी मूर्ति बनाया और आज भी उनके नाम पर लोग श्रद्धा सुमन समर्पित करते हैं, उनका गुणगान गाते हैं तथा अपने मन में यह भाव बनाते हैं कि उनके जीवन में जो दिव्य गुण थे वे हमारे जीवन में भी आयें।

उपासना इसीलिए की जाती है 'देवोभूत्वा देवं यजेत्' देवता होकर हम देवता की पूजा करें। उपासना में बल तभी मिलता है जब आपके इष्टदेव सर्व गुण सम्पन्न हैं और आप भी उन गुणों से विभूषित होने के लिए प्रयास करते हैं। किन्तु आज हमारा समाज महापुरुषों का नाम जपता है, गुणगान गाता है, श्रद्धा सुमन समर्पित करता है, लेकिन उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास नहीं करता है। उपासना के क्षेत्र में यह कितनी बड़ी दुर्बलता है कि आदमी केवल नाम जपकर, केवल संकीर्तन करके भवसागर से पार जाना चाहता है!

एक बार मैं लखनऊ में था। वहां से मुझे रिजर्वेशन कराना था। मैं रिजर्वेशन दफ्तर गया और वहां जो रिजर्वेशन बाबू थे, उनको अपना आवेदन दिया। हमारे साथ कुछ और साधु थे। हम लोगों की वेशभूषा देखकर बाबूजी बहुत खुश हुए और कहने लगे कि महाराज, हम तो भवसागर से पार करने के लिए बहुत सस्ता साधन बतलाते हैं।

उनकी बात सुनकर मुझे जिज्ञासा हुई, मैंने पूछा कि क्या करते हैं? उन्होंने बताया कि भगवान का संकीर्तन करते हैं और केवल ढाई सौ रुपये एक रात के लिए लेते हैं, बस।

उन्होंने भवसागर से पार होने के लिए सस्ता साधन निकाल लिया है कि "कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥ नहिं कलिकर्म न धर्म विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥" कलयुग में कोई कर्म नहीं, धर्म नहीं, भक्ति नहीं, विवेक नहीं, केवल राम नाम का अवलम्बन लीजिए। 'सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिये, जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।'

उनकी बात मुझे मनोरंजक लगी। मैं हंसने लगा लेकिन कुछ कहा नहीं, क्योंकि मैं सोच रहा था कि अभी कुछ कह दूं तो कहीं ऐसा न हो कि मेरा रिजर्वेशन का काम रुक जाये, इसलिए मैं चुप रहा।

रिजर्वेशन जब हो गया और रिजर्वेशन टिकट अपने हाथ में ले लिया तब मैंने उनसे पूछा—"बाबूजी, आप यह बताइये कि एक आदमी मास्टर बनना चाहता है किन्तु उसके पास पढ़ने के लिए पैसा नहीं है, समय भी नहीं है तो वह क्या करे? इसका कोई सस्ता साधन बताइये।

उन्होंने कहा—तब नहीं हो सकता है। जब पढ़ेगा नहीं तो मास्टर कैसे हो पायेगा?

फिर मैंने उनसे कहा—अच्छा, एक आदमी है वह पढ़ना नहीं चाहता और उसको कुछ आता भी नहीं है।

पैसा भी उसके पास नहीं है लेकिन उसके मन में डॉक्टर बनने की बहुत इच्छा है। इसका सरल उपाय क्या हो सकता है, बताइये।

उन्होंने कहा—वह डॉक्टर नहीं होगा। इसका कोई सरल उपाय नहीं है।

फिर मैंने उनसे कहा—अच्छा, एक आदमी वकील बनना चाहता है लेकिन वह पढ़ना नहीं चाहता, उसके पास पैसा नहीं है तो इसका शार्टकट रास्ता क्या है?

बाबू ने कहा—वह वकील नहीं हो सकता है।

मैंने उस बाबू से कहा—बताइये, जब मास्टर बनने के लिए, डॉक्टर बनने के लिए, वकील बनने के लिए सरल उपाय नहीं हो सकता है तो भवसागर से पार होने के लिए सरल उपाय कैसे हो सकता है? आप उसके लिए सरल उपाय कैसे निकाल लिये?

तब वे मेरी ओर बड़ी-बड़ी आंखें निकालकर ऊपर से नीचे तक देखने लगे और शायद सोचने लगे हों कि देखो, इस साधु को कि कहां का तर्क कहां फिट कर दिया! तो बन्धुओ! सरल उपाय नहीं है। सरल उपाय मत पूछिये। आप लोगों को धोखा दिया गया है।

कथाकारों ने आपको धोखा दिया है, आपको सरल रास्ता बता दिया है और कह दिया है कि 'गृह कारज नाना जंजाला।' आप गृहस्थी के नाना जंजाल में फंसे हुए हैं। हम आपको सरल उपाय बताते हैं जिससे 'इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपरं ययौ' इस लोक में सुख भोगकर आप परलोक में मोक्ष गति को प्राप्त हो जाओगे।

वे आपको सरल साधन बता दिये कि दिन भर आप ब्लैक मार्केटिंग करिये, धोखेबाजी करिये और सत्यनारायण भगवान की कथा सुन लीजिए तो सारे पाप समाप्त हो जायेंगे। और इतना ही नहीं, अंत में मोक्ष गति भी प्राप्त हो जायेगी। लेकिन सोच लीजिए कि सरल उपाय बतानेवाले लोगों ने इस प्रकार आपको गुमराह कर दिया है।

सरल उपाय बताया गया कि केवल अमुक प्रकार से आप भगवान का नाम जप लीजिए, भवसागर से पार हो जायेंगे लेकिन यह कहकर आपको बहुत बड़ा धोखा दिया गया। सरल उपाय बताने वाले लोगों ने आपको बता दिया और उसी में आप तृप्त हो गये, लेकिन यह जान लो कि वही धोखा है।

जिस प्रकार बच्चा रोता है तो मां उसे चटुआ दे देती है कि वह चुप हो जाये, किन्तु केवल चटुआ से तृप्ति नहीं होती है। अंत में बच्चा चटुआ फेंक देता है और रोने लगता है तब मां उसको दूध पिलाती है और तब बच्चा तृप्त होता है। इसी प्रकार आपको यह चटुआ-जैसा दे दिया गया है। यह सस्ता नुस्खा है। आप अपने गुरुजनों से कहिये कि हमें कल्याण का सही साधन बताइये, सस्ता नुस्खा मत बताइये। सरल साधन बतानेवाले, शार्टकट रास्ता बतानेवाले लोग समाज को केवल गुमराह करते हैं।

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती।
नाथ न पूर आव यहि भांती॥
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहहीं।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

प्रहस्त ने कितनी सुन्दर सलाह दी अपने पिता रावण को कि हे नाथ! आपके मंत्री आपको सही सलाह नहीं दे रहे हैं। प्रिय वाणी कहने वाले और सुनने वाले संसार में बहुत लोग पाये जाते हैं किन्तु जो बात सुनने में कठोर लगती हो किन्तु हित की हो ऐसा कहने और सुनने वाले बहुत कम लोग होते हैं।

संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब की तो प्रकृति ही ऐसी थी कि "मैं सच्चे पथ का राही हूं, कह सकता दिन को रात नहीं। ईमान बेंच दूं टुकड़ों में, यह मेरे बस की बात नहीं॥" बिल्कुल सही-सही और खरी-खरी बात कहनेवाले संत सम्राट सद्गुरु कबीर हैं। इसलिए उन्होंने कहा कि 'मानुष तेरा गुण बड़ा।'

कोई आदमी किसी देश में जन्म लेने के कारण महान नहीं हो सकता। कोई आदमी किसी सम्प्रदाय में दीक्षा ले लेने के कारण महान नहीं हो सकता। कोई

आदमी अमुक ग्रंथ पढ़ लेने के कारण महान नहीं हो सकता। महानता का मानदण्ड है मानवता। इसलिए मानवता सबसे मूल्यवान चीज है। आज ही नहीं, सदा से इसकी बहुत जरूरत रही है।

आज मंदिर बढ़ रहे हैं, मस्जिदें बढ़ रहीं हैं, गिरजाघर बढ़ रहे हैं किन्तु मानवता घट रही है जबकि मानवता ही सबका केन्द्रबिन्दु है। जैसे विभिन्न नदियां समुद्र में जाकर मिल जाती हैं, ठीक इसी प्रकार दुनिया के सारे सम्प्रदाय मानवता में आकर मिल जाते हैं। मानवता सबका मिलनबिन्दु है।

आप सम्प्रदाय जगत में देखें, कोई राम-राम जप रहा है, कोई हरि ओम जप रहा है, कोई सतनाम जप रहा है, कोई राधा स्वामी कह रहा है, कोई स्वामीनारायण कह रहा है। अपने-अपने सम्प्रदायों के अनुसार ये मान्य नाम हैं। ये मानो विभिन्न नदियां हैं और मानवता केन्द्रबिन्दु है, मिलन-स्थल है। वही सबका परम लक्ष्य है।

'अपने अपने इष्ट को नमन करें सब कोय।' अपने-अपने सम्प्रदाय हैं, अपने-अपने इष्ट हैं। और यह स्वाभाविक भी है कि हम अपने इष्ट को नमस्कार करते हैं किन्तु आदमी चाहे जिस सम्प्रदाय का माननेवाला हो, चाहे जिस ग्रंथ को माननेवाला हो, चाहे जिस स्थान का रहनेवाला हो और चाहे जिस प्रकार का कपड़ा पहननेवाला हो, अगर उसके जीवन में मानवता नहीं है तो वह आदमी सज्जन नहीं कहला सकता है, धर्मात्मा नहीं हो सकता है। वह राष्ट्र के लिए एक अच्छा नागरिक नहीं हो सकता है। अगर मनुष्य महान है, मूल्यवान है तो अपने गुणों के नाते ही।

सतावे जो गरीबों को, उसे शैतान कहते हैं।
गरीबों की करे रक्षा, उसे भगवान कहते हैं।
हविश की हविश इंसान को, हैवान बना देती है।
हविश की चोट इंसान को, इंसान बना देती है।
अगर हविश से बचे जीवन भर,
तो इंसान को भगवान बना देती है।

इंसान ही सद्गुणों को धारण करके भगवान बनता है। हमारे मन में बहुत बड़ा भ्रम है कि भगवान कहीं आकाश में रहता है और समय-समय से वह अवतार लेता है। यह केवल भ्रम ही नहीं बहुत बड़ा अंधविश्वास है। यह तथ्य नहीं है। तथ्य यही है कि आदमी अपने कर्मों से महान बनता है, भगवान बनता है।

जो भगवान होगा वह इस संसार में आयेगा क्यों? उसका संसार से सम्बन्ध कैसे होगा? दर्शन के पक्ष में हमें अच्छी तरह चिंतन नहीं है। और अच्छा चिंतन न होने का कारण क्या है? इस पर सद्गुरु कबीर साहेब ने प्रकाश डाला है और कहा है—

पछापछी के कारने, सब जग रहा भुलान।
निरपक्ष होय के हरि भजे, सोई संत सुजान॥

(बीजक, साखी)

पक्षपात एक बहुत बड़ा आवरण है। हमें अपने सम्प्रदाय का पक्ष होगा, अपने आचार्यों का पक्ष होगा, परम्परा का पक्ष होगा तो हम सत्य का अनुसंधान नहीं कर सकते हैं।

पक्षपात में पड़े रहकर जब हम सोचते हैं तो हमारे सोचने का दायरा इतना संकीर्ण हो जाता है कि हम मान लेते हैं कि हमारे मत के ग्रंथ में जो लिखा है वही सत्य हो सकता है और दूसरों के ग्रंथों में जो लिखा है वह सत्य नहीं हो सकता है।

जब तक शास्त्रों का, महापुरुषों का, परम्पराओं का पक्षपात बना रहेगा, तब तक तत्त्वबोध नहीं हो सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि शास्त्रों, महापुरुषों और परम्पराओं की आवश्यकता नहीं है। शास्त्रों में, महापुरुषों में, परम्पराओं में श्रद्धा रखें, किन्तु इसके साथ-साथ अपनी बुद्धि का भी प्रयोग करना सीखें।

हम अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, केवल मान लेते हैं। किन्तु स्मरण रहे, जो जानने का प्रयास नहीं करते हैं, वे सत्य से वंचित रह जाते हैं। इसलिए संत सम्राट सद्गुरु कबीर साहेब ने क्रांतिकारी स्वर में कहा कि 'मानुष तेरा गुण बड़ा।'

जिन नारियों में सतीत्व रहा, सद्गुण रहे, उनको लोगों ने कहा कि यह पतिव्रता हैं, सती हैं, साध्वी हैं।

जिन पुरुषों में सद्‌गुण रहे, उनको कहा गया कि ये सज्जन हैं, भक्त हैं, सदाचारी हैं, वीर पुरुष हैं। जिन्होंने अपने राष्ट्र के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया, कुर्बान कर दिया, लोग श्रद्धा से उनका गुणगान करते हैं।

आदमी के जीवन में, आदमी का जो मूल्य है, वह केवल उसके गुणों के नाते है। आज के इस वैज्ञानिक युग में सभी चीज़ों का मूल्य बढ़ा है। पहले रुपये का चार सेर घी बिकता था। वही घी आज चार सौ रुपये किलो पहुंच गया है। आप सोचिये कि घी का मूल्य कितने गुणा बढ़ गया? इसी प्रकार चावल का मूल्य कितने गुणा बढ़ गया। सोने का मूल्य कितना बढ़ा है। चांदी का मूल्य कितना बढ़ा है लेकिन आदमी का मूल्य कितना गिर गया है?

आदमी का मूल्य आज इतना गिर गया है कि सरकार को लाचार होकर लिखाना पड़ा है कि 'अगला बच्चा अभी नहीं, और दो के बाद कभी नहीं।' हमारे पड़ोसी देश चीन में तो लिख दिया गया कि 'केवल एक दूसरा कभी नहीं।'

आदमी के जीवन में अगर संयम होता, मानवता का विकास होता तो आज पूरे विश्व में ये समस्याएं न होतीं, जो आज हैं। आदमी के जीवन में अगर संयम होता तो आतंकवाद की समस्या, बलात्कार की समस्या, अपहरण की समस्या आज न होती। आप यह न सोचें कि ये समस्याएं केवल हमारे यहां ही हैं, विदेशों में नहीं हैं। ये समस्याएं विश्वव्यापी हैं। सुना जाता है कि अमेरिका में जिस अनुपात में धन बढ़ा है उसी अनुपात में वहां समस्याएं बढ़ गयी हैं।

हमारी समस्याओं का स्थायी समाधान धन से नहीं होता है। धन से केवल जीविकोपार्जन की समस्या का समाधान होता है लेकिन धन से दूसरी समस्याएं बढ़ गयीं हैं। पढ़ा जाता है कि इस समय सबसे अधिक पागलों की संख्या अमेरिका में है। विश्व में सबसे अधिक आत्महत्या करनेवालों की संख्या अमेरिका में है। अमेरिका के लोग जीवन में अनेक बार शादी करते हैं। वहां की स्थिति इतनी दयनीय है कि पिता की शादी में पुत्र बारात जाता है।

यहां अपने देश में, वह सब सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा लेकिन वहां अमेरिका में वह सब हो रहा है। इसलिए जब तक मानवीय गुणों का विकास न होगा, मानवता का विकास न होगा, हम चाहे जितना धन कमा लें, भीतर से तृप्त नहीं हो सकते हैं, शांत नहीं हो सकते हैं। और जो वास्तविक सुख है, उसकी अनुभूति हम नहीं कर सकते हैं। इसलिए संत सम्राट सद्‌गुरु कबीर साहेब का बहुत सार्थक निर्देश है कि मानव गुणवान बने। वे पूरे मानव समाज को सही दिशा देना चाहते हैं। आपके जीवन में सम्पत्ति हो और सम्पत्ति के साथ-साथ सदाचरण भी हो। दोनों का होना बहुत जरूरी है।

निर्वाह के लिए सम्पत्ति हो और पवित्र जीवन, निर्विकार जीवन जीने के लिए, शान से जीवन जीने के लिए सदाचरण हो। इसलिए संत सम्राट सद्‌गुरु कबीर साहेब की यह साखी बहुत महत्त्वपूर्ण है—'मानुष तेरा गुण बड़ा, मांस न आवै काज। हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजन बाज॥'

मंदिरों में हम जाकर जहां अपना श्रद्धा-सुमन समर्पित करते हैं, चाहे वे देवी हों या देवता, उनका जीवन हम देखें कि उनका जीवन कितना पवित्र रहा है। हनुमान जी कहते हैं—'राम काज कीन्हें बिना मोहि कहां विश्राम।' कितनी बड़ी स्वामीभक्ति उनमें रही है, कितना पवित्र जीवन उनका रहा है। उनकी पूजा करके, उनकी आराधना करके उनसे हम यह प्रेरणा प्राप्त करें कि हमारे जीवन में भी वे सद्‌गुण आयें। हम भी स्वामीभक्त बनें। हम भी सदाचारी बनें। अगर इस प्रकार की प्रेरणा लें तो हमारा जीवन सार्थक होगा।

सद्‌गुरु कबीर साहेब किसी एक सम्प्रदाय की बात नहीं करते हैं, किसी एक जाति की बात नहीं करते हैं। वे तो सम्पूर्ण मानव जाति के विकास की बात करते हैं। इसलिए हर आदमी का ध्यान इस तरफ जाना चाहिए कि हमारे जीवन में सद्‌गुण आयें, जिससे हमें अपने अंतर में तृप्ति मिले, शांति मिले तथा हम शांति के साथ जीवन जी सकें और जिससे हमारा जीवन सफल हो, समाज में सुव्यवस्था और शांति हो। ❑

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

दृश्य क्षण-क्षण भाग रहा है। चाहे जितने प्यारे मनुष्य, पदार्थ और परिस्थिति मिलें, वे स्थिर नहीं रह सकते। उनका खो जाना पक्का है। परंतु तुम अपने से कभी अलग नहीं हो सकते हो। इसलिए दृश्यों से पूर्ण उपराम होकर आत्मचिंतन, आत्मरमण, आत्मस्थिति में ही रहकर सदैव आत्माराम होकर रहना चाहिए। जिनकी वासनाएं काफी क्षीण हो गयी हैं और स्वरूपस्थिति की प्रगाढ़ अवस्था में रहने की शक्ति प्राप्त हो गयी है, वे सावधान होकर निरंतर स्वरूपस्थिति में मन रखें। जिनकी साधना इतनी तीव्र नहीं है, वे सेवा, स्वाध्याय और ध्यान में लगकर उसके योग्य बनने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहें। बिना पूर्ण स्वरूपस्थिति की प्राप्ति के कभी दुखों का सर्वथा अंत नहीं हो सकता।

* * *

अनात्म द्वैत है। द्वैत दुख है, भय है, संताप है। अतएव मन में द्वैत को स्थान न दो। मन ही द्वैत है। उसे साधे रहो, आत्म-अभिमुख रखो, बाहरी स्मरण में न बहने दो। तुम्हारे साथ तुम्हारा अपना माना हुआ शरीर नहीं है। यह आजकल में पता नहीं कहां जाकर सड़ेगा, जलेगा या जानवरों का भोजन हो जायेगा। जब शरीर अपना नहीं है, तब विचार करो, क्या तुम्हारा है? याद रखो, तुम्हारा केवल तुम हो। अतएव सदैव द्वैत-रहित रहने की साधना में लीन रहने के प्रयत्न में रत रहो। सांसारिक तृष्णा के कारण मन चारों तरफ डगमगाता है। तृष्णा का पूर्ण त्याग कर देने पर मन अपने आप शांत हो जाता है। सदैव मन को देखो। दूसरों की नुक्ता-चीनी में मत पड़ो, अपितु सदैव अपने मन को सम्हालो।

* * *

जीवन के दिन जितने बीते हैं, उनमें द्वंद्व के अतिरिक्त क्या पाये हो? लौकिक उन्नतियां स्वप्न की तरह आयीं और गयीं, और तुम ठनठन गोपाल ही रह गये। तुम अपनी असली उन्नति को समझो, वह है संसार से मन का हटकर आत्मलीन रहना। इसी में परमानंद है, परम सुख है और परमशांति है। जब तक शरीर है, इसको चलाने के लिए थोड़ा सादा भोजन लो और शरीर की ही रक्षा के लिए थोड़े कपड़े। सोने-रहने के लिए जगह मिलती रहेगी। इस शरीर को हर समय धूल समझो जैसा कि यह तथ्यतः है, और अपने शाश्वत स्वरूप में निमग्न रहो। आत्मलीनता में इतना डूबो कि बाहर की कोई परवाह न रह जाये। बाहर संसार तो सब समय चलता रहेगा।

* * *

एक दिन यह शरीर शिशु था, एक दिन बालक, एक दिन कुमार, एक दिन युवा, आज वृद्ध है। बस, आज-काल में धूल हो जायेगा। इस स्थिति को हर क्षण देखने वाला अपने आप में रहता है। तुम अपने नाम और रूप के लिए किसी से आशा मत रखो। नाम-रूप ही मिथ्या है। उसके लिए क्या सोचना! अपने आप में निरंतर स्थित रहने के लिए सोचो। दृश्य का अभाव सच्ची साधना है। दृश्य के अभाव से चेतन द्रष्टा भी नहीं रहता, अपितु शुद्ध चेतन मात्र स्थित रहता है। अतएव मन की माया को त्यागकर सदैव अपने आप में स्थित रहो। जो कुछ तुम्हारे चारों तरफ है, वह रहने वाला नहीं है। उनका मोह-त्याग तुम्हारी स्वरूपस्थिति में सहायक है।

* * *

जीवन में हजारों का मेला भले मिले, परंतु जब हम शौचालय में, स्नानागार में तथा शयन में जाते हैं तब अकेला रहते हैं; और सांस टूटने पर केवल अकेला। मोक्ष में सदैव अकेला है। अतएव हमें अकेलेपन को पुष्ट करना चाहिए। दृश्य का अभाव इसकी मुख्य साधना है। मन दृश्यों को छोड़कर शांत हो जाये, और यह अभ्यास अधिक-से-अधिक किया जाये तब इसी जीवन में निर्भय शांति की प्राप्ति होती है। "आखिर में रहना है अकेला, तो झमेला कौने काम का।" अतएव साधक को मन और इंद्रियों से प्रतीतमान का मोह और स्मरण छोड़कर सदैव आत्माराम में रमना चाहिए।

बोधवान मन को शांत कर देता है, तब शेष आत्मा ही है।

* * *

कल शाम को एक प्रौढ़ संत आये जो स्वामी रामसुखदास जी के साथ अट्ठाइस वर्ष रह चुके हैं। बहुत सरल, विनम्र और निर्मल मन के थे। उनके साथ एक भक्त भी थे। वे मेरी कुछ पुस्तकें पढ़े हैं और कैसेट के माध्यम से प्रवचन भी सुने हैं। वे बारंबार पूछते थे, ''पारस से छू जाने से लोहा सोना हो जाता है, सत्संग से काग हंस हो जाता है।'' उनका प्रश्न था कि महान संतों की कृपा से साधक बिना परिश्रम के क्या मुक्त हो सकता है? मैंने कहा कि सच्चे गुरु-संतों की शिक्षा से साधक को स्वरूपज्ञान और स्वरूपस्थिति की दिशा मिल जाती है, साधक को स्वयं परिश्रम करना पड़ेगा। स्वयं के परिश्रम किये बिना मन शुद्ध नहीं होगा। हर जीव अपने मन का स्वतः द्रष्टा है, अतः उसे स्वतः मन को शुद्ध करना पड़ेगा।

* * *

काल चक्र निरंतर चल रहा है। यह जीव अपने शुद्ध स्वरूप को भूलकर संसार-वन में मोहित होकर भटक रहा है। जबकि यहां कुछ भी मोहक नहीं है। मोहक मानना अज्ञान से है। इसी अज्ञान में फंसकर जीव इस संसार-स्वप्न में भटकता है। जो चाहे कि मेरा भटकना बंद हो, वह संसार को वैसा ही देखे जैसा कि वह है? वह कैसा है? सार-हीन है, भागता जा रहा है और एक दिन सदैव के लिए ओझल हो जायेगा। क्योंकि अपना माना हुआ शरीर लुप्त हो जायेगा, जिससे संसार हमसे ओझल हो जायेगा। इस संसार से क्या पाना चाहते हो? यहां कुछ पाया नहीं जाता है। जो लगता है कि पाया गया है वह खो जाता है, और जब तक अपने पास लगता है, तब तक केवल मान्यता के कारण अपना लगता है।

* * *

सब आध्यात्मिक ऋषि, औलिया, पीर, संत तथा फकीर यही कहते हैं कि असली ऐश्वर्य भीतर है। वह क्या है? इसका अन्वेषण करना चाहिए। आत्मा स्वयं ही अपना अनंत ऐश्वर्य है। इस बोध की सफलता तब होती है जब चित्त संसार से टूटकर पूर्णतया अंतर्मुख हो जाता है। बोधवान के लिए कुछ बाहर से पाना नहीं रहता है। बाहर की चीजें बाहर ही रह जाती हैं। उनको हम चाहे जितना छाती-पेटे लगाये रखने का हठ करें, वे हमारे पास रहेंगी नहीं। जब तक वे हमारे पास रहेंगी, यदि हम पूर्ण सावधान नहीं हैं, तो उनमें हम अपने को धोखा देंगे। अतएव सारे जड़-दृश्यों से लौट कर अपने में निरंतर डूबे रहना परम ऐश्वर्य को पाना है।

* * *

मेरे 'मैं' दो हैं, एक असली है और दूसरा नकली है, बनाया हुआ है। जो मेरा असली मैं है, वह मेरा नित्य स्वरूप है, निर्विकार है, स्थिर है, शाश्वत, शुद्ध, चेतन और शांत है। दूसरा जो मैं है वह मन का बनाया है। वह शरीर, नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, राग-द्वेष, हानि-लाभ, कम-अधिक, मोह, तृष्णा आदि का समुच्चय है। हम अपने मन में कंटीले पौधे उगाते हैं और उन्हीं से नुच-नुचकर दुखों में जलते हैं। विषैले विचार रखते हैं, इसलिए मुख से मवाद निकलता है। कटुवचन मवाद है जो अपने को तो टीसता ही है, दूसरों को भी टीसता है। यह मन का मैं शुद्ध करके ही हम सुख से जी सकते हैं। हमने मन को बिगाड़ा है, तो हम उसे ठीक कर सकते हैं।

* * *

लक्ष्य तो केवल एक है निरंतर आत्मलीनता में निमग्न रहना। आना-जाना, कहना-सुनना, मिलना-जुलना, हानि-लाभ, देखना-छूना और इन दृश्यों का स्मरण करना, सब क्षणिक है और सदैव के लिए इन्हें विस्मृति के गर्त में डूबना है। अतः इन बातों को लेकर इनमें डूबना, इनका बारंबार स्मरण करना तथा इनमें रमना अपने गले में फांसी लगाना है। अपने को सबसे छुड़ा लो। तुम्हारा तुम्हारे अलावा कुछ नहीं है, और जो तुम हो, वह शुद्ध चेतन मात्र है। अतएव सारा जड़-दृश्य छोड़कर अपने आप में रमो। कुछ न सोचना अपने आप में स्थित होना है। दृश्य का पूर्ण त्याग हो गया, तो स्वयं शेष। ❑

साक्षी की सजगता

लेखक—श्री ललितप्रभ जी महाराज

संत नागार्जुन किसी सम्राट के महल में भोजन के लिए आमंत्रित हुए। नागार्जुन अपना मिट्टी का पात्र साथ लिए राजमहल में पहुंचे। रानी ने संत को भोजन करवाया। उसके मन में विचार आया, नागार्जुन इतने महान संत हैं और वे मिट्टी का पात्र रखें, यह अनुचित है। रानी ने अपने पास से रत्नजड़ित स्वर्ण-पात्र उन्हें भेंट में दे दिया। नागार्जुन ने वह पात्र ले लिया। रानी ने सोचा था नागार्जुन संत हैं, यह पात्र लेने से इंकार कर देंगे। पर यह क्या, रानी ने दिया, नागार्जुन ने बगैर आग्रह स्वीकार कर लिया?

संत रवाना होने लगे। रानी से रहा न गया, उसने सोचा यह कैसा फकीर है। इसने एक बार भी इंकार न किया। मेरे महल में एकमात्र रत्नजड़ित स्वर्ण-पात्र है। मैंने तो सिर्फ मनुहार की थी और इन्होंने तो स्वीकार ही कर लिया।

रानी ने कहा, संत साहब! आप जानते हैं, यह पात्र रत्नजड़ित स्वर्ण का है। संत मुस्कराए, कहने लगे, 'रानी! तुम्हारी नजर में यह भले ही रत्नजड़ित सोने का पात्र हो लेकिन मेरे लिए तो स्वर्ण और मिट्टी के पात्र में कोई अंतर नहीं है। वह काली मिट्टी का पात्र था, यह चमकीली मिट्टी का पात्र है।'

रानी संकोचवशात् कुछ बोल नहीं पाई और संत उस पात्र को लेकर चले गए।

लाखों का पात्र था वह। संत उसी में भिक्षाटन करने लगे। एक दिन एक चोर की नजर उस पर पड़ गई। उसने सोचा यह निर्वस्त्र फकीर, इसके हाथ में यह रत्न जड़ा पात्र कहां से आ गया। यह तो मांग कर खा रहा है, वह भी स्वर्ण-पात्र में। चोर ने फकीर का पीछा करना शुरू किया। दोपहर का समय था, नागार्जुन अपनी कुटिया की ओर जा रहे थे। उन्हें शक हो गया कि यह आदमी, जो पीछे आ रहा है, इसकी नीयत ठीक नहीं है।

नागार्जुन अपनी कुटिया में चले गए और चोर कुटिया के पीछे छिपकर बैठ गया। उसने सोचा जब यह संत फकीर सो जाएगा, तब मैं पात्र उठाकर ले जाऊंगा। नागार्जुन को भी विचार आया कि अवश्य ही यह आदमी इस पात्र को लेने आया है। बेचारा नाहक ही दो घंटे प्रतीक्षा करेगा। क्यों न मैं खुद ही उसके लिए इस पात्र का त्याग कर दूं। उन्होंने वह पात्र उठाया और खिड़की से नीचे गिरा दिया। चोर भौंचक्का रह गया। सोचने लगा मैं तो इसे चुराने के लिए संत के पीछे-पीछे आया था और इन्होंने इतनी निस्पृहता से इसे बाहर फेंक दिया। जरूर कोई खास बात है। वह कुटिया के दरवाजे पर पहुंचा और पूछा, फकीर साहब! क्या मैं भीतर आ सकता हूं। संत ने कहा, 'मैंने तुम्हें भीतर बुलाने के लिए ही यह पात्र बाहर फेंका था। मैं नहीं चाहता था कि जब मैं सोया हुआ होऊं, तब तुम कुटिया में आओ। मैं जागा रहने पर तुम्हें कुटिया में देखना चाहता था।'

वह चोर नागार्जुन के पैरों में गिर पड़ा, कहने लगा आप धन्य हैं। आपने सोने के पात्र को ऐसे फेंक दिया जैसे यह मिट्टी का पात्र हो।

सोना और माटी! जहां कोई माटी का बर्तन छोड़ने को तैयार नहीं होता, वहां नागार्जुन सोने का पात्र बेझिझक गिरा देते हैं। ठीक वैसे ही जैसे पेड़ पत्तों को झाड़ देता है।

हमारे पास लाखों रुपए हो सकते हैं, पर नागार्जुन जैसी अनासक्ति नहीं है। बुद्ध जैसी शांति नहीं है। अकूत संपत्ति के स्वामी हो पर लाओत्से जैसा आनंद अभी हमारे पास नहीं है। किसी फैक्ट्री के मालिक भी हो पर कृष्ण की बांसुरी से निःसृत होने वाला रस हमारे पास नहीं है। हम आनंद लूटना नहीं जानते हैं। प्रकृति ने तो हमें बहुत कुछ दिया। महावीर तो निर्वस्त्र होकर जंगलों में भी जीवन का आनंद ले सकते हैं और लोग सारी सुख-सुविधाओं के बीच भी जीवन का आनंद नहीं ले पाते।

सुख प्राप्त कर सकते हो, दुखी हो सकते हो, लेकिन आनंद का अनुभव नहीं कर पाते हो। अनेक बार

जीवन में सुख-दुख की अनुभूति होती है लेकिन आनंद से अछूते रह जाते हो। सुख-दुख की अनुभूति देह, चित्त और मन को होती है लेकिन आनंद की अनुभूति, यह तो आत्मा का स्वभाव है। आप राजमहल में रहकर सुखी हो सकते हैं, सड़क पर दुख पा सकते हैं लेकिन भीतर का आनंद प्राप्त कर लेने पर आप राजमहल और सड़क दोनों जगह प्रसन्न रह सकते हैं। जब आनंद हमारा स्वभाव बन जाएगा तब हम धन कमाएं या गंवाएं, सुखी ही रहेंगे।

आज मनुष्य की हालत गंभीर होती जा रही है। एक गहरा सन्नाटा छा गया है अंतरात्मा में। भीतर के अस्तित्व में न कोई स्वर बचा है, न अहोभाव का संगीत। भीतर के गीतों की, आनंद, उत्सव और धन्यता की हत्या हो गई है। जिस घड़े में अमृत होना था, बदनसीबी से आज उसमें जहर भरा है। जहां सोना होना था वहां राख उड़ रही है। अस्तित्व में आए तब फूलों की संभावनाएं लेकर आए थे, लेकिन हम खुद ही कांटे बन गए हैं।

आपने देखा, रोज सुबह सूर्य कितना प्रसन्नमुख उदित होता है, फूल कितने पुलकित भाव से खिलते हैं, पक्षियों की चहचहाट कितनी प्रसन्नता से होती है। पर मनुष्य! उदासी भरे क्षणों में उसकी सुबह होती है। रात-भर विश्राम मिला इसलिए सुबह चेतना को और अधिक प्रफुल्लित, सशक्त होनी चाहिए, पर यहां तो उलटी गाड़ी चलने लग गई है। किसी घर में जाकर देखो, लोग सात-आठ-नौ बजे तक तो सोये मिलेंगे। फिर जैसे-तैसे उनकी आंख खुलवाओ तो लगेगा जैसे किसी मूर्च्छित को उठा रहे हैं, ऐसी उदासी। बिस्तर से उठाओ तो सोफे पर जाकर गर्दन झुका लेंगे, वहां से उठाओ तो कहीं और। मेरे प्रभु, जो समय प्रकृति से अपूर्व आनंद पाने का था, आत्मोत्सव मनाने का था, उस समय हम सोये रह गए, उदास और हताश बने रह गए।

आदमी सब कुछ पाकर भी खाली ही जी रहा है। कहीं कोई उमंग नहीं है, तरंग नहीं है उसमें अपने जीवन के प्रति। जिसने निजानंद स्वरूप को पहचान लिया, उसके जीवन का मरुस्थल भी मरुद्यान बन जाता है, उपवन हो जाता है। भीतर का स्रोत उमड़ जाता है। फूल खिल उठते हैं। एक साथ होली और दीवाली हो जाती है।

आपने देखा, इस धरती पर सब खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही चले जाते हैं पर बीच में कितना शोरगुल कर जाते हैं। कितने उपद्रव, कितनी झंझटें। यहां कुछ भी तुम्हारा नहीं है, फिर भी लाख झंझटें तुमने मोल ले ली हैं। जो धन तुम्हारे पास नहीं है, वह तो पराया है ही, पर वह भी तो पराया है जिस पर तुम अपनी मालकियत की मोहर लगाए बैठे हो। कहीं और से तुम्हारे पास आया और एक दिन कहीं और चला जाएगा। तुम सिर्फ नाम भर के मालिक हो।

कहते हैं किसी व्यक्ति ने अपने विवाह की पहली वर्षगांठ पर मित्रों को पार्टी दी। मेजें सज गईं, थालियां लग गईं। तभी पत्नी ने कहा, 'जी! अंदर आपकी संदूक में जो चांदी के चम्मच हैं, आज उन्हें बाहर ले आइए। आपके मित्रों को उसी से भोजन करवाएंगे।'

पति ने कहा, 'नहीं! यह तो किसी भी स्थिति में संभव नहीं है।'

पत्नी ने कहा, 'क्या आपको अपने मित्रों पर इतना भी भरोसा नहीं है, कौन से वे आपके चम्मच चुरा कर ले जाएंगे!'

पति मुस्कराया, कहने लगा, 'चुराकर तो नहीं ले जाएंगे पर पहचाने जरूर जाएंगे।'

तुम्हारी हालत भी इससे मिलती-जुलती ही है। इसलिए जिंदगी भारभूत बनी हुई है। जिंदगी में कई भार निरर्थक ढो रहे हो, उन्हें हलका करो और भार-मुक्त हो जाओ। अन्यथा दिन में भोजन और रात की नींद भी हराम हो जाएगी। बहुत-से लोग ऐसे हैं जो सोने के लिए नींद की गोलियां ले रहे हैं। अथाह संपत्ति है और सो भी नहीं पा रहे हैं। उनसे पूछो वे जिंदगी की कौन-सी सार्थकता को जी रहे हैं। सुख से नींद भी नहीं ले पा रहे हो, शेष बात तो बहुत दूर है। फुटपाथ पर सोने वाले भिखारी को नींद की गोलियां खाते हुए देखा है?

सुख और दुख की अनुभूति में आत्मा का कोई सरोकार नहीं है। सुखी और दुखी होना हम पर निर्भर है। एक दंपती मेरे पास आए। बातों ही बातों में पत्नी

कहने लगी, मेरे पति बहुत दुखी हैं। कोई उपाय कीजिए। मैंने उनसे दुख का कारण जानना चाहा क्योंकि मुझे पता था उनका अच्छा व्यवसाय है, लड़के हैं, मकान हैं, कार है, फिर दुख का कारण? वे महानुभाव कहने लगे, मैंने पिछले वर्ष दस लाख कमाए थे पर इस साल पांच लाख ही कमा पाया। इसी बात का दुख है। उसे इस बात की प्रसन्नता नहीं है कि पांच लाख कमाए, अब उसे इस बात का गम है कि पांच लाख कम कमाए।

तुम तीन मंजिल के मकान में रहकर सुखी भी हो सकते हो और दुखी भी। जब-जब सात मंजिल के मकान को देखोगे भीतर में दुख पैदा होगा कि ओह! इसे तो सात मंजिल का मकान मिला है, लेकिन वही दुख सुख में बदल जाएगा जब पड़ोस की झोपड़ी को देखोगे। तुम कहोगे ऊपर वाले ने मुझे तो तीन मंजिल का मकान दिया है पर इसे तो मात्र टूटी-फूटी झोपड़ी। यह मनुष्य के ऊपर है कि किसी दृश्य को देखकर वह सुख उत्पन्न करना चाहता है या दुख। कुछ भी पता नहीं चलता कि वह क्या चाहता है। कभी वह चीज सुख बन जाती है और कभी दुख। चीज न आती है न जाती है, केवल विचारों के माध्यम से सुख-दुख का कारण बन जाती है।

तुम लॉटरी का टिकट खरीदते हो। दूसरे दिन पाते हो कि समाचार पत्र में वही टिकट नंबर छपा है। एक लाख का पुरस्कार तुम्हें मिल गया है। तुम अपने मित्रों, परिचितों, परिवारजनों को आमंत्रित करते हो और एक रात्रिभोज का आयोजन कर लेते हो। पांच हजार खर्च कर डालते हो। अगले दिन समाचार पत्र में विज्ञापन पढ़ते हो कल के विज्ञापन में भूलवश गलत नंबर छप गया था। अब तुम छाती पीटने लगोगे। न तो रुपए आए, न रुपए गए, लेकिन उस नंबर ने तुम्हारे भीतर खुशियां भी पैदा कर दी और उसी नबंर ने दुख भी पैदा कर दिया। सुख और दुख प्रायः बाहर के निमित्त से आते हैं जबकि अंतस् का आनंद किसी निमित्त से नहीं, अंदर के स्वभाव से उपजता है।

मैं आपसे कहना चाहता हूं आप सुख पाने की न सोचें। जीवन में आनंद और उत्सव को उपलब्ध करने का लक्ष्य रखें। जहां सुख होगा वहां दुख भी होगा। सुख और दुख एक सिक्के के दो पहलू हैं लेकिन आनंद चिरस्थायी है, वह कभी दुख में परिणित नहीं हो सकता। जब व्यक्ति के भीतर यह भाव आता है कि मैं साक्षीभाव में, दृश्य-भाव में जी रहा हूं तब वह आनंद की अनुभूति कर सकता है। इसे ऐसे अनुभव करें—जब शरीर पर कोई फोड़ा हो जाए, बहुत पीड़ा दे रहा है लेकिन उस पीड़ा को देख-देखकर आप अपने मन में यह भाव परिपक्व कर लें कि यह शरीर मेरा नहीं है, यह फोड़ा मेरा नहीं है, फिर इस देह में होने वाली पीड़ा की अनुभूति मुझे क्यों हो रही है। बार-बार इस तत्त्व का चिंतन करते रहो, पीड़ा को बाहर निकालते रहो तब दर्द की कोई अनुभूति नहीं होगी। मैंने ऐसे लोगों को देखा है। आपने नाम सुना होगा साध्वी विचक्षणश्री जी का, जिन्हें स्तन का कैंसर हो गया था लेकिन उनके मुंह से उफ तक नहीं सुनी गई। ऐसा नहीं कि वहां दर्द नहीं था, दर्द था। शरीर का स्वभाव अपना काम कर रहा था लेकिन उन्होंने आत्मा का स्वभाव पहचान लिया था। वह आत्मा शरीर के स्वभाव से मुक्त हो गई थी। जिन लोगों ने इस साध्वी को देखा है वे जानते हैं कि उस कैंसर की गांठ से खून रिसता था, मवाद बहकर आता रहता था और वे आराम से बातें करती रहती थीं। हालत यह थी कि कोई उनके दर्शन को जाता तो कभी-कभी उन्हीं से पूछ लेता यहां ऐसी कौन-सी साध्वीजी हैं जिन्हें कैंसर हो गया है, क्योंकि उनके चेहरे पर सहज सौम्यता थी।

जब व्यक्ति आत्मा के आनंद को पहचान लेता है, अपने मूल अस्तित्व को पहचान लेता है तब देह के साथ होने वाली पीड़ा की अनुभूति नहीं हो पाती। हमारे साथ तो उलटा हो रहा है। हमने देह को ही आत्मा मान लिया है। देह में ही आत्मा का भाव पैदा कर लिया है। हमारी सारी प्रवृत्तियां देह के साथ जुड़ गई हैं। कोई भी व्यक्ति देह से निवृत्त होकर आत्मा में प्रवृत्त नहीं हो पाता। मनुष्य शरीर को ही आत्मा और आत्मा को ही शरीर मान लेता है। जबकि दोनों का भेद स्पष्ट है कि आत्मा शरीर में रहते हुए भी शरीर से अलग है। रथ पर बैठे रथिक की तरह।

आपने नारियल देखा है। जब तक नारियल के भीतर पानी होता है उसे हिलाओ केवल पानी की आवाज आती है, जब नारियल का पानी सूख जाता है उसे हिलाओ तो नारियल के गोले की आवाज आती है। कुछ समय पहले यह आवाज नहीं आ रही थी। जब पानी सूख गया और अंदर का भाग ठीकरी से अलग हो गया तो गोले की आवाज आने लगी। नारियल में तीन चीजें हैं ऊपर की जटा, नीचे लकड़ी, उसके भीतर नारियल। तीनों एक-दूसरे से जुड़े हैं। जैसे नारियल के भीतर रहते हुए भी नारियल का गोटा अलग रहता है वैसे ही जिस व्यक्ति ने आत्मबोध प्राप्त कर लिया है, वह शरीर में रहते हुए भी शरीर से पूर्णतया मुक्त और स्वतंत्र रहता है। जो आत्मलीन हो चुका है, आत्मा के सहज स्वभाव को पहचान चुका है, वह चाहे जिन स्थितियों में रहे स्वयं को सबसे अलग महसूस कर सकता है। यही तो भेद-विज्ञान की उपलब्धि है।

बताते हैं, करीब सत्तर वर्ष पूर्व काशी नरेश का ऑपरेशन हुआ। विदेशों से डॉक्टर आए थे। उन्होंने डॉक्टरों से कहा 'मैं ऑपरेशन कराने को तैयार हूं पर मुझे बेहोश नहीं करोगे।' डॉक्टरों ने कहा, 'नरेश! आप कैसी बात करते हैं बिना बेहोश किए कभी ऑपरेशन हुआ है।' काशी नरेश मुस्कराए और कहने लगे, 'डॉक्टर! इतने वर्ष साधना के पश्चात थोड़ा-सा होश आया है और तुम होश को बेहोशी में बदलना चाहते हो। मुझे गीता की पुस्तक लाकर दे दो, मैं उसे पढ़ता रहूंगा, अपने में लीन हो जाऊंगा। फिर तुम्हें जो ऑपरेशन करना हो कर लेना। मैं जब गीता पढ़ता हूं तो मेरी देह का स्वभाव मुझसे अलग हो जाता है। मैं देह से उपरत हो गीता से जुड़ जाता हूं।'

आखिर काशी नरेश का ऑपरेशन बिना बेहोशी की दवा दिए ही हुआ। वे गीता पढ़ते रहे ऑपरेशन हो गया। डॉक्टर ने उन्हें हिलाया, वे हिल नहीं पा रहे थे। वे गीता में इतने तन्मय हो गए थे। जब गीता के अठारह अध्याय पूर्ण हो गए, तब नरेश ने डॉक्टरों से पूछा, 'डॉक्टर! मेरा ऑपरेशन हो गया?'

व्यक्ति ने देह और आत्मा के स्वभाव को पहचान लिया और अपने स्वभाव को पहचान लेने पर हड्डी भी टूट जाए तो तकलीफ नहीं होती।

बहुधा ऐसा होता है, जब हम इंजेक्शन भी लगवाते हैं, तो एक टीस-सी होती है, चीख निकल जाती है। आज मैं फिर आपसे कहूंगा कल को जब आप इंजेक्शन लगवा रहे हों उससे पहले संकल्प कर लें, यह देह को लग रहा है, मुझे नहीं लग रहा है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं आपको अहसास भी नहीं होगा। आप रोज प्रार्थना में गाते हैं—

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानी ना चरण मां, हों वंदन अगणीत।

जिस व्यक्ति ने शरीर में रहते हुए शरीर के स्वभाव को पहचान लिया है, वही व्यक्ति साधना के मार्ग पर कदम बढ़ा सकता है।

यह मुक्ति का स्वरूप है कि जो शरीर में रहते हुए भी स्वयं को शरीर से उपरत कर चुका है। देह में रहते हुए देह से ऊपर उठना, कीचड़ में रहते हुए कीचड़ से ऊपर उठना, यही तो साधना की पराकाष्ठा है।

एक बात और कहना चाहता हूं कि हमारा अंधकार से लड़ने का जो स्वभाव बन गया है उसे भी बदलना होगा। आप कमरे में गए, जहां अंधकार ही अंधकार है। अब आपने इसे लाठियों से पीटना शुरू कर दिया। आप रात भर अंधकार को पीटते रहो, पर यह कभी भी दूर न होगा। अंधकार को भगाने के लिए अंधकार को दबाना नहीं है। अंधकार को मिटाने के लिए पहली शर्त प्रकाश की एक किरण पैदा कर दो। आप अंधकार से जूझते रहेंगे पर इससे मुक्त नहीं हो पाएंगे। तुम जीवन भर दुर्व्यसनों से, कषायवृत्तियों से, लालसाओं से, सम्मोहन से जूझते रहोगे पर इनसे मुक्त नहीं हो पाओगे। अरे, अंधकार से लड़ाई करके किसने उस पर विजय प्राप्त की है? एक दियासलाई जलाओ, एक प्रकाश की किरण, एक दीपशिखा ही सारे अंधकार को दूर करने को पर्याप्त है। अंधकार को समाप्त करने के लिए अंधकार से जूझने की जरूरत नहीं है। प्रकाश का बोध पाने की जरूरत है। एक वृक्ष से लाखों तीलियां बनती हैं

लेकिन एक तीली में वह क्षमता है जो लाखों वृक्षों को जला सकती है। प्रकाश की एक रेखा सारे अंधकार को दूर कर सकती है।

अब यह हमारे हाथ में है कि हम दियासलाई का क्या उपयोग करते हैं। उससे दूसरे के घरों में आग लगाते हैं या अंधकार मिटाते हैं। प्रकृति ने औढरदानी बनकर मनुष्य को अपार क्षमताएं दी है। यह मनुष्य पर है कि इन क्षमताओं का वह दुरुपयोग करता है या सदुपयोग।

आणविक शक्ति का उपयोग सृजन के लिए करते हो या विध्वंस के लिए यह आप पर निर्भर है। आणविक क्षमता स्वयं न तो सृजन करती है न विध्वंस। विज्ञान ने जितनी भी प्रगति की है, प्रत्येक प्रगति से हम सृजन और विध्वंस दोनों ही कर सकते हैं। हमारे हाथ में तलवार है अब यह हम पर है कि इसका उपयोग हम किसी को मारने में करते हैं या बचाने में। हम अपनी शक्तियों का सृजनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों उपयोग कर सकते हैं। एक बात स्मरण रखिए जो व्यक्ति सृजन में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर पाता वह विध्वंस में उपयोग करता है। गांधी जैसा व्यक्ति उस शक्ति को सृजन में लगाएगा और हिटलर जैसा व्यक्ति विनाश-विध्वंस ही करेगा। मेरे देखे, बहुधा व्यक्ति अपनी शक्ति का दुरुपयोग ही करता है।

विज्ञान कहता है, मनुष्य अगर एक बार क्रोध करता है, तो दिन भर की ऊर्जा नष्ट हो जाती है। जिस सृजन की क्षमता से हम गीत बना सकते थे, हमने गालियां बनाई। आप सभी लोग क्षमता के धनी हैं। अब आप क्षमता का उपयोग क्षमा के लिए करते हैं या क्रोध के लिए, यह आप पर निर्भर है। जीवन में जितनी भी क्षमताएं हैं सबका उपयोग बोधपूर्वक करो। सृजन करो तो भी होश से और विध्वंस करो तो भी बोधपूर्वक होना चाहिए। हमारे गाल पर मक्खी बैठी है और हमने हाथ से चांटा लगाकर उसे उड़ा दिया तो हम दोष के भागी हो गए। मक्खी को चोट नहीं लगी पर हमने बेहोशी से हाथ उठाया। यह बात गौण है मक्खी को चोट लगी या नहीं, मुख्य तो यह है कि हमने बेहोशी से हाथ उठाया। बोधपूर्वक-ध्यानपूर्वक हाथ उठाते-उठाते अगर मक्खी को चोट भी लग जाए तो हम दोष के भागी नहीं हो सकते।

क्रोध भी होश से करो और जैसे ही बोध जगेगा, आप क्रोध नहीं कर पाएंगे, किसी को अपशब्द नहीं कह सकेंगे।

एक सज्जन मुझे कहने लगे कि उन्हें क्रोध बहुत आता है, कोई उपाय बताइए। एक बात तय है कि मनुष्य अपरिमित क्षमता का स्वामी है, नहीं तो जोर की आवाज कहां से आती। हाथ-पैर कैसे पछाड़ता। चीख-चिल्लाहट कैसे करता। यह अलग बात है कि उसे अपनी क्षमता का बोध नहीं है। इसलिए इन क्षमताओं का दुरुपयोग हो रहा है। वह व्यक्ति क्रोध को मिटाने का उपाय पूछ रहा था। मेरे पास एक कागज का टुकड़ा था मैंने उस पर लिखकर दिया 'मुझे क्रोध आ रहा है।' मैंने उससे कहा इसे अपनी जेब में रखो और जब भी क्रोध आए, इस चिट को निकालकर पढ़ना। जैसे ही पढ़ोगे तुम्हें बोध हो जाएगा, होश आ जाएगा और बोध के साथ कभी कोई क्रोध या अशुभ कृत्य नहीं कर सकता। बोध तुम्हें हर अशुभ कृत्य से दूर रखेगा। इसलिए कभी अशुभ कृत्य करने की वेला भी आ जाए तो अपने बोध को जीवित रखो।

मेरी नजर में वही व्यक्ति चरित्रवान और समाधिस्थ है जिसका जीवन, जीवन के सारे व्यवहार अमूर्च्छित हैं, होशपूर्ण हैं। इसलिए मैं तो कहता हूं, जो व्यक्ति जितना होशपूर्वक जीता हो, उतना ही उसके जीवन में दूसरों को सताने के, दुःखी करने के मौके कम आएंगे। अगर आप बोधपूर्वक, पल-प्रतिपल जागरूकता के साथ जीना शुरू कर दें, तो आपके जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन होना शुरू हो जाएगा। आपके लिए क्रोध करना मुश्किल हो जाएगा। क्रोध के लिए, हिंसा के लिए, चोरी के लिए बेहोश होना जरूरी है। यह अनिवार्य लक्षण है।

लोग मुझे पूछते हैं आपको क्रोध क्यों नहीं आता? कुछ लोगों को तो इस बात को लेकर आश्चर्य है कि कोई आपको कटु कहे जा रहा है और आप वही प्रसन्नमुख हैं। मेरे प्रभु, क्षमा करें मैं क्रोध नहीं कर सकता। क्रोध

करूंगा तभी जब मैं बेहोश हो जाऊंगा। और मैं अमूर्च्छित व्यवहार को चरित्र का बुनियादी लक्षण मानता हूं।

मुझे याद है लाओत्से चीन में थे। चीन के सम्राट ने, जिसकी राजसभा के मंत्री की मृत्यु हो गई थी, सभा बुलाई और पूछा, इस देश में सबसे बुद्धिमान व्यक्ति कौन है, जिसे मैं अपना मंत्री बना सकूं? सभी ने सलाह दी, वर्तमान में तो सबसे अधिक बुद्धिमान लाओत्से है। सम्राट ने कहा, लाओत्से को लाया जाए। वह जहां भी है, उसे यहां लाया जाए। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते सेनापति समुद्र किनारे पहुंच गया, जहां लाओत्से एक कछुए को इधर-उधर घुमा रहे थे। सेनापति ने लाओत्से से कहा, तुम यहां मिट्टी से खेल रहे हो, छोड़ो कछुए को, चलो राजमहल में, चीन का सम्राट तुम्हें प्रधानमंत्री बनाना चाहता है। उठो, मेरे साथ चलो।

लाओत्से मुस्कराए और कहने लगे सेनापति मुझे एक बात कहो, राजमहल में राजसिंहासन के पीछे एक कछुआ है, जो स्वर्ण-पत्र से मंडित है, मेरे पास भी एक कछुआ है, इससे पूछो क्या यह भी राजसिंहासन के पास स्वर्ण-मंडित होकर रहना चाहेगा। सेनापति ने कहा, यह वहां नहीं जाना चाहेगा क्योंकि सोने की परत चढ़ाने के लिए पहले कछुए को मारना पड़ता है। वहां भी जो कछुआ स्वर्ण-पत्र चढ़ा हुआ है, वह भी मृत है। लाओत्से ने कहा, मुझे बताओ मैं अपने जीवन में, जीवन की तलाश में हूं या मृत्यु की तलाश है मुझे। हो सकता है राजमहल में पहुंचकर मुझ पर सोने की पर्तें भी चढ़ जाएं। पर जैसे यह कछुआ राजमहल में नहीं जाना चाहता वैसे ही मैं भी यहां स्वतंत्र जीवन जीना चाहता हूं।

लाओत्से! तुम यह क्या कह रहे हो, सेनापति बोला, तुम्हारे जीवन में यह प्रथम अवसर आया है, चीन का सम्राट तुम्हें प्रधानमंत्री बनाना चाहता है। यह असंभव कार्य संभव हो रहा है, तुम तैयार हो जाओ। लाओत्से हंसे, कहने लगे, सेनापति! सम्राट से जाकर कह दो कि लाओत्से जीवन की तलाश में निकला है मृत्यु की नहीं। जिस दिन उसकी मृत्यु की इच्छा हो जाएगी, वह खुद ही तुम्हारे राजमहल में पहुंच जाएगा।

हमारे साथ भी यही घटित हो रहा है, तलाश तो हम जीवन की कर रहे हैं। हमारे भीतर भावनाएं जीवन की हैं पर हमारे कदम निरंतर मृत्यु की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, देह जर्जर हो रही है। क्षण-प्रतिक्षण मृत्यु की ओर जा रहे हैं। आज तक कोई भी वह तारीख नहीं बता पाया, जब उसके सिर के बाल सफेद हो गए। उसकी कमर झुक गई, दांत टूट गए, झुर्रियां पड़ गईं, कोई नहीं बता सकता यह सब कब और कैसे हुआ। बस हो गया। तुम्हारी उम्र चुक रही है। कल तुम बच्चे थे, आज युवा हो गए हो, कल वृद्ध हो जाओगे लेकिन किसी भी दिन तुम इस परिवर्तन को नहीं जान पाओगे। मनुष्य रोज अपना चेहरा आइने में देखता है फिर भी यह बोध नहीं होता कि मेरी देह, मेरा चेहरा, क्षण-प्रतिक्षण जर्जर होता जा रहा है।

समय स्थिर नहीं रहता। जवानी बुढ़ापे में बदल जाती है। जवानी कभी लौटकर नहीं आती और आया हुआ बुढ़ापा कभी छूटकर नहीं जाता। कभी तुम दस वर्ष के थे आज सत्तर वर्ष के हो लेकिन अब भी अबोध हो। देखते हो, एक पचास वर्ष का व्यक्ति अपने बेटे का बचाव करते हुए कहता है यह अबोध है गलती हो गई। पर पता है, कौन अधिक अ-बोध है? मैं आपसे यही कहना चाहता हूं हम चाहे जो करें पर बोध के साथ करें, जागरूकता के साथ करें।

जागरूकता के साथ कदम बढ़ाने पर भीतर से हम पूरी तरह से निर्लिप्त रहेंगे। कर्म करते जाओ लेकिन कर्तृत्व भाव से दूर रहो। कर्ता-भाव से अलग रहो। जीवन में जो कुछ आ रहा है पीछे लौटने को है। प्रत्येक वर्तमान अतीत में बदल जाता है, आज कल में ढल रहा है, जब प्रत्येक क्षण पीछे छूट रहा है तब जरा सोचो, जीवन में बोध और जागरूकता के भाव कैसे उत्पन्न हों। जो आया है सब पीछे जा रहा है, कुछ भी तुम्हारे पास स्थायी रूप से नहीं बचा है। हर घड़ी बीतती जा रही है। अगर मनुष्य ईमानदारी से जान जाए कि मुझे जो कुछ मिला है वह सब छूट रहा है, समाप्त हो रहा है तो वह कभी भी कर्तृत्व-भाव में जीने का प्रयास नहीं करेगा। हमेशा साक्षी-भाव में जीयेगा।

कर्म करना धर्म है, लेकिन मैं और मेरा जोड़ना जीवन को अहंकार से भर लेना है, स्वार्थपरक हो जाना है। इन दोनों को छोड़ देने पर जीवन में जो भी घटित होगा तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा। यदि सुख में जी रहे हो, तो यह भी बीत जाएगा और यदि दुख में जी रहे हो तो यह भी। दुख और सुख दोनों बीत जाएंगे पर इनके साथ कहीं तुम भी मत बीत जाना।

मुझे याद है, एक फकीर किसी सम्राट के पास पहुंचा। सम्राट ने कहा, फकीर! तुम मुझे ऐसी चीज देकर जाओ, कोई एक ऐसा मंत्र, एक ऐसी शिक्षा कि जिसे पाने के बाद जीवन में और कुछ पाना शेष न रहे। फकीर ने अपनी उंगली में से अंगूठी निकाली और सम्राट को दे दी। कहा—'सम्राट, यही तुम्हारे लिए शास्त्र बनेगा, जीवन का मंत्र बनेगा और दुनिया का महान संदेश बनेगा। सम्राट, इस अंगूठी के ऊपर जड़े रत्न के नीचे मैंने एक शिक्षा लिखी है, पर सावधान! जब जीवन की विकटतम वेला आ जाए, तभी इस रत्न को निकालकर अंदर लिखे हुए मंत्र को पढ़ लेना।' फकीर चला गया, पर सम्राट के मन में हर समय कुतूहल रहता कि आखिर इसमें लिखा क्या है? पर फकीर की बात याद आ जाती सम्राट रुक जाता। कुछ वर्ष बीत गए। पड़ोसी राजा ने उसके राज्य पर हमला कर दिया। सम्राट युद्ध में पराजित हो गया। अपने बचे-खुचे सैनिकों को लेकर वह भाग निकला। दुश्मनों की सेना उसका पीछा करती आ रही थी। धीरे-धीरे सैनिक भी पीछे छूट गए। सम्राट अकेला भागता चला जा रहा था। एक अवसर ऐसा आया कि आगे रास्ता भी दिखाई नहीं दे रहा था। वह पहाड़ी रास्तों में फंस गया। आगे रास्ता बंद, अब घोड़ा भी आगे नहीं जा सकता था। सम्राट वहीं घोड़े से उतरकर बैठ गया। दुश्मन के घोड़ों की टप-टप की ध्वनि आ रही थी। सम्राट ने सोचा दुश्मन आ पहुंचे हैं और अब मेरा बचना मुश्किल है। तभी उसे फकीर की वह बात याद आ गई, 'जीवन की विकटतम वेला में रत्न को निकालकर अंदर लिखे मंत्र को पढ़ लेना।'

सम्राट ने वह रत्न अंगूठी में से बाहर निकाला। भीतर एक कागज का टुकड़ा निकला। सम्राट ने खोला, पढ़ा 'दिस टू विल पास'—यह भी बीत जाएगा। और सम्राट के भीतर चेतना जाग गई। उसे कुछ ढाढ़स मिला। कुछ देर में ही जो घोड़ों की पगध्वनि आ रही थी बंद हो गई। चैन की सांस ली, उसने साहस बटोरा, संकल्प किया। अपने मित्रों को एकत्र कर सेना गठित की। पुनः अपने राज्य पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। सिंहासन पर बैठा। बहुत प्रसन्न था, गौरवान्वित था, चारों ओर खुशियां मनाई जा रही थीं। इसी प्रसन्नता के बीच अचानक सम्राट को फकीर का मंत्र याद आ गया 'दिस टू विल पास।' सम्राट उदास हो गया। मंत्री ने पूछा, राज्याभिषेक के समय आपके चेहरे पर उदासी! सम्राट ने वह कागज का टुकड़ा उठाया और कहने लगे यह भी बीत जाएगा। जब बुरा वक्त निकल गया तो यह अच्छा वक्त भी कब तक टिका रहेगा।

आप इस मंत्र को हमेशा अपने साथ रखिएगा। जब आप इस बोध को हमेशा साथ रखेंगे तो जीवन में मूर्च्छा, लालसा और तृष्णाएं अपना मकड़जाल नहीं रच पाएंगी। हमें सदा स्मरण रहेगा कि यह भी बीत जाएगा। ध्यान का ध्येय यही है कि व्यक्ति अपने भीतर के बोध को, होश को, जागरूकता को जगा ले। ध्यान की अग्नि जलाकर अपने कर्मों को समाप्त कर ले। अपनी चेतना से जुड़ जाए। ध्यान का कार्य यही है कि व्यक्ति को अंतस्-जागरूक चेतना दे दे। इसके बाद जहां तुम रहोगे वहीं ध्यान सधेगा। जरूरत है बस एक बार बोध की लौ सुलगने की, जागरूकता की ज्योत जगने की।

अपने होश, अपने बोध और अपनी जागरूकता को हमेशा जीवित रखो। जागरूकता के साथ जो भी कदम उठेगा वह सफल और सार्थक होगा। उसके बाद ध्यान तुम्हारे जीवन में आनंद का अपूर्व उत्सव घटित करेगा। एक अद्भुत आनंद, अपूर्व उल्लास, प्रफुल्लित चेतना। बस! क्षमा करें, उस अपूर्व आनंद को तो मैं भी शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर पाऊंगा। जीवन की इस अत्यंत पावन घटना का अनुभव आप खुद करेंगे। भीतर जो अंधेरी रात दिखाई देती है, चांद खुद-ब-खुद प्रकट होगा, बदलियां छंट जाएंगी। न केवल तुम्हारे भीतर

चलिए अपनी बाट

एक चुटकुला है। एक स्कूल में अध्यापक ने बच्चों से पूछा—वह कौन सी चीज है जो बनी तो है दूसरे काम के लिए किन्तु उसका उपयोग उस काम के लिए न कर किसी अन्य काम के लिए किया जाता है? प्रश्न सुनकर सारे बच्चे चुप खड़े रह गये तब एक बच्चे ने कहा–यदि आप मेरा उत्तर सुनकर नाराज न हों और मुझे दंड न दें तो मैं उत्तर बता सकता हूं। अध्यापक ने कहा–तुम निर्भीक होकर उत्तर दो। न तो मैं नाराज होऊंगा और न तुम्हें दंड दूंगा। बच्चे ने कहा—सर! आपके हाथ में जो रूल है वह बना तो है रजिस्टर में लाइन खींचने के लिए, परंतु आप उसका उपयोग हम लोगों को मारने के लिए करते हैं।

यही बात सब लोगों की है। मनुष्य का शरीर मिला है सेवा-साधना कर आत्मकल्याण करने के लिए, परंतु मनुष्य यह न कर वह सब काम करता है, जो नहीं करना चाहिए।

जिस काम के लिए हम लोग आये हैं, वही काम करें। अन्य लोग अन्य काम कर रहे हैं, उन्हें अपना काम करने दें। हम अपना काम करें। अब अपना काम क्या है? किस काम के लिए हम लोग यहां आये हैं? हमें सोचना यह है कि दुनिया में किस काम के लिए आये हैं।

मनुष्य शरीर मिला है तो किस काम के लिए मिला है? लड़ने के लिए, झगड़ने के लिए, कलह-विवाद करने के लिए, चुगली-ईर्ष्या करने के लिए क्या मनुष्य का शरीर मिला है?

क्या बीड़ी पीने के लिए, तंबाकू खाने के लिए और ज्यादा हो गया तब शराब पीकर नाली के पास गिरने के लिए मिला हुआ है मनुष्य शरीर?

आदमी ने अपने को कितना बिगाड़ लिया है। जिंदगी बीत जाती है लेकिन आदमी सोचता नहीं है कि इस दुनिया में आया हूं तो किस काम के लिए आया हूं और जिसके लिए आया हूं वह काम मैं कर रहा हूं या नहीं।

दुनिया में जितने मनुष्य हैं किसी कोने के रहने वाले हों, किसी मत-मजहब के मानने वाले हों, किसी देश के रहने वाले हों, किसी भाषा के बोलने वाले हों सबको मोक्ष का काम करने के लिए मनुष्य शरीर मिला है। मोक्ष का काम क्या है—दुख से छुटकारा, परमानंद, परमशांति, परमसुख-परमतृप्ति की प्राप्ति और वह भी इसी जीवन में रहते-रहते। कोई क्लेश, कोई कुण्ठा, कोई पीड़ा, कोई जलन मन में न रह जाये। मन हर समय भरा-भरा तृप्त-संतुष्ट रहे। हर समय प्रसन्नता के सागर में निमज्जन करता रहे। कभी किसी बात के लिए किसी प्रकार कोई कमी का अनुभव न हो। आत्मतृप्त, आत्मसंतुष्ट, आत्मशांत मन, यही मोक्ष का अनुभव है और यही हमारा और मानव मात्र का मुख्य काम है।

लेकिन यह मोक्ष का काम लाखों-करोड़ों में कोई एक करता है। यद्यपि हर आदमी मोक्ष चाहता है, बंधन किसी को प्रिय नहीं है। मोक्ष सबको प्रिय है। लेकिन मोक्ष का काम लाखों में कोई एक करता है जबकि उसी

पूर्णिमा होगी, मेरे प्रभु! तुम खुद पूर्ण हो जाओगे—

संगीत की ध्वनि वायु में जैसे मचलती।
या पिछले पहर रात अमृत में ढलती।
यूं ध्यान में यौवन के थिरकता रूप।
ज्यों स्वप्न की परछाई नयन में चलती।
ज्यों सोम सरोवर में हृदय हंस का स्नान।
ज्यों चांदनी लहरों में बांसुरी की तान।
मुग्धा के मृदुल अधर पै यों साध की बात।
ज्यों ओस धुले फूल की पावन मुस्कान।

हां, तुममें भी ऐसा ही कुछ घटित होगा। प्रणाम है उन्हें जो इस ओर दो कदम बढ़ा चुके हैं।

('ध्यान योग' से साभार)

काम के लिए हम दुनिया में आये हैं। मनुष्य जीवन में ही मोक्ष का काम संभव है लेकिन वही नहीं होता है।

दूसरा काम क्या है? स्वर्ग का काम लेकिन स्वर्ग जाने का काम आदमी कहां करता है। स्वर्ग जाने का काम क्या है? कोई माला जपना, कोई पूजा करना, कोई पाठ करना, कोई व्रत करना, तीर्थ जाना, तुलसी की पूजा करना यह स्वर्ग जाने का काम नहीं है। इससे स्वर्ग नहीं मिलता। स्वर्ग का काम है, स्वर्ग का रास्ता है सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करना, सबको आदर देना, सबका सम्मान करना, छोटे-बड़े सबका ऊंचा-नीचा सहन कर लेना, आदर पाने की भावना न रखना किन्तु जो बन सके दूसरों को आदर देना, प्रेम की गंगा बहाना लेकिन यह काम कितने लोग करते हैं। अधिकतम लोग तो नरक जाने का ही काम कर रहे हैं।

कहा जा सकता है कि हम तो नरक जाने का कोई काम नहीं करते हैं। हम चोरी, हिंसा, हत्या, व्यभिचार नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, दूसरे को धोखा नहीं देते तो नरक जाने का काम कहां कर रहे हैं। बाहर से तो लगता है नरक जाने का काम नहीं किया जा रहा है, लेकिन झांकें अपने मन को कि मैं नरक जाने का काम कर रहा हूं या स्वर्ग जाने का काम कर रहा हूं।

मन में कुढ़न है, ईर्ष्या है, घृणा है, अनेक प्रकार के विकार हैं, चिंता है तो नरक जाने का ही काम तो हो रहा है। आपने सुना कि पड़ोसी के लड़के को अच्छी नौकरी मिल गई, आपके बगल में आपके पड़ोसी ने तीन तल्ले का बढ़िया मकान बना लिया और पड़ोसी को दुकान में बड़ा फायदा हो गया यह सुनकर आपके मन में ईर्ष्या आ गई तो आपने नरक जाने का काम कर लिया।

किसी को दुखी देखे, कोई शरीर से रोगी है, पीड़ित है, गरीब है, अपाहिज है, किसी की हानि हो गई, किसी के यहां किसी की मृत्यु हो गई और आपका मन खुश हो गया तो नरक जाने का रास्ता बना लिया। कोई आपका विरोधी है आपका नुकसान करता है यदि आपके विरोधी को कोई तकलीफ हुई और आपका मन खुश हो गया तो आपने नरक जाने का रास्ता तैयार कर लिया। अपने मन को टटोल कर देखें ऐसा होता है या नहीं। किसी की उन्नति को देखकर, किसी की खुशी को देखकर मन में ईर्ष्या हुई; कभी दुखी को देखकर मन में घृणा हुई तो नरक जाने का रास्ता बना लिया। बहुत बारीकी से मन को देखना पड़ता है तब समझ में आता है कि मन की दशा कैसी है। नरक जाने का काम कर रहे हैं या स्वर्ग जाने का काम कर रहे हैं।

हम किसी का विरोध न करें। लेकिन कोई हमारा विरोध करता हो, कोई हमें अपना शत्रु मानता हो और बराबर हमारा नुकसान करता हो यदि उस आदमी को भी तकलीफ हुई, उसका भी घाटा हुआ तो उसकी तकलीफ को देख करके मन में दया की भावना आयी, करुणा की भावना आयी तो यह स्वर्ग जाने का रास्ता बना रहे हैं। दुखी को देखकर मन में करुणा जागी, उसके दुख को दूर करने के लिए प्रयास किया तो समझ लें पुण्य का काम कर रहे हैं। स्वर्ग जाने का रास्ता बना रहे हैं।

लेकिन यह बड़ा मुश्किल है। राम कह लेना, रहीम कह लेना, गुरु-पीर कह लेना, पूजा कर लेना, पाठ कर लेना ये सब तो सरल हैं। लेकिन इनसे जीवन परिवर्तन, जीवन उत्थान का काम नहीं होता है। अनेक विश्वास हैं लोगों के, अनेक संस्कार हैं, अनेक रूढ़ियां हैं, मान्यताएं है, जो जैसा जिस संप्रदाय का है अपने-अपने संप्रदाय के अनुसार कोई पूजा करता है, कोई पाठ करता है। कोई नाम जपता है अच्छा है। कुछ न करने से कुछ करना अच्छा है।

कोई बैठ करके राम-राम, सतनाम-सतनाम कह रहा है तो अच्छा ही कह रहा है क्योंकि किसी की निंदा तो नहीं कर रहा है, किसी की बुराई तो नहीं कर रहा है। खुरापात का तो काम नहीं कर रहा है। अपने इष्ट की याद में डूबा हुआ है। संस्कार अच्छे बन रहे हैं। लेकिन इतने से शांति नहीं मिलेगी। इसके लिए और आगे बढ़ना पड़ेगा और वही काम नहीं हो रहा है।

स्वर्ग, नरक और अपवर्ग ये तीन हैं। तीनों में से एक का काम करना है। स्वर्ग का काम किये तो वर्तमान जीवन सुखद रहेगा। आगे का जीवन भी सुखद रहेगा। नरक का काम किये तो आज दुखी रहेंगे और आगे दुखी रहेंगे और अपवर्ग का काम किये तब सदैव के लिए सारी झंझटों से, सारे कष्टों से, सारी पीड़ा, सारे दुखों से छुटकारा हो जायेगा।

विचारना है कि यह मनुष्य जीवन हमें क्यों मिला है। विचार करना मनुष्य का मुख्य लक्षण है। जानवर विचार नहीं करता है क्योंकि जानवर के पास मन नहीं है। उनके पास जो मन है वह बहुत स्थूल है। जानवर गहराई से, गंभीरता से विचार नहीं करता। आदमी में मन का विकास हुआ है और मन के कारण ही आदमी को आदमी कहा जाता है। 'मननात् मनुष्यः' मनन करने के कारण यह प्राणी मनुष्य कहलाता है। मनुष्य के पास मन की शक्ति नहीं होती तो मनुष्य में और जानवरों में कोई फर्क नहीं होता। फर्क है मन के कारण।

मन का मुख्य काम है मनन करना, विचार करना, सोचना। सोचता तो हर आदमी है लेकिन गलत ढंग से सोचता है। सही बात नहीं सोचता। यदि आप विचार करें तो गलत चीज नहीं खायेंगे। यदि आप विचार करें तो बीड़ी-सिगरेट नहीं पीयेंगे। विचार करे तो कोई आदमी शराब नहीं पियेगा।

विचार नहीं करता है आदमी इसलिए जो नहीं खाना चाहिए वह खाता है, जो नहीं पीना चाहिए उसे पीता है, जो नहीं बोलना चाहिए वह बोलता है और जो नहीं करना चाहिए ऐसे काम करता है। खाने-पीने, बोलने, बात-व्यवहार करने में, काम-धंधा करने में, हर बात में विचार करें तो कभी कोई गलत काम नहीं हो सकता।

किसी ने कितना बढ़िया कहा है—ऐसी वाणी बोलिए कोई न कहे चुप। ऐसी जगह बैठिए कोई न कहे उठ। बहुत साधारण सी बात है। लेकिन बात करने के पहले विचारते कहां हैं। बिना विचारे बोलते रहते हैं। घर-घर में जो कलह है उसमें बहुत बड़ा कारण बिना विचारे बोलना है। जब भी आपको किसी से बोलना हो तो एक बार विचार लीजिए।

बोलने के पहले सोच लें कि जो बात मैं कहने जा रहा हूं वही बात दूसरा मुझसे कहेगा तो मुझे कैसे लगेगा। अगर आपको यह लगता है कि जो बात मैं कहने जा रहा हूं वही बात मेरा पिता कहता है, पुत्र कहता है, भाई कहता है, पत्नी कहती है तो बात बुरी लगेगी तो ऐसी बात कभी मत बोलिए क्योंकि वह बात बुरी होगी। वह बात औरों को भी बुरी लगेगी। यदि आपको यह लगता है कि जो बात मैं कहने जा रहा हूं वही बात मेरा पिता, मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरा मित्र, मेरी पत्नी कहते हैं तो उस बात को सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी तो आप बेधड़क उस बात को बोलें। आपकी बात सुनकर अन्यों को भी बड़ी प्रसन्नता होगी।

कोई काम आप करने जा रहे हैं लेकिन करने के पहले विचार लें कि जो काम मैं करने जा रहा हूं वही काम मेरा पिता मेरा भाई, मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरी मां,, मेरी बहू करेंगे तो कैसा लगेगा। यदि लगता है कि मुझे बुरा लगेगा तो आपका काम बुरा है कभी न करें। किन्तु लगता है कि यह काम यदि ये लोग करते हैं तो अच्छा लगेगा तो निश्चिंत होकर करें।

इस कसौटी पर अपने को कसकर देखें तो जीवन में कभी गलत बात जबान से नहीं निकलेगी और कोई गलत काम आपसे नहीं होगा। फिर स्वर्ग का रास्ता खुला खुलाया है।

बहुत लोग कहते हैं, डॉक्टर भी कहते हैं, साधु-महात्मा भी कहते हैं कि बीड़ी पीना गलत है। शराब पीना गलत है, जुआ खेलना गलत है, व्यभिचार करना गलत है। मैं नहीं कहता यह सब गलत है। निश्चिंत होकर आप बीड़ी पीओ, शराब पीओ, जुआ खेलो, चोरी करो, व्यभिचार करो लेकिन मेरा प्रश्न इतना ही है कि यदि आपका बेटा शराब पीता है और आपको गलत लगता है तो आपका शराब पीना गलत है । आप जुआ खेलते हो, खेलो अपनी कमाई के पैसा का खेलते हो खेलो, लेकिन आपका बेटा जुआ खेलता है, आपका भाई जुआ खेलता है तो आपको कैसा लगेगा। आप व्यभिचार करते हो, आपका मन परायी बहू-बेटी की तरफ चलता है तो आपको अच्छा लगता है लेकिन सोचो आपकी पत्नी का मन पराये पुरुष की तरफ चले तो आपको कैसा लगेगा। बस केन्द्र में अपने को रखकर सोचो, फिर आप कभी गलत काम नहीं करोगे।

आदमी तो बेहोशी में जी रहा है। स्वर्ग जाने का काम कहां करता है। होश नहीं है, इसलिए आदमी नरक में ही जानें का काम हर समय कर रहा है। स्वर्ग जाने का काम करना हो तो आपको विचार करना होगा।

'करहू विचार जो सब दुख जाई', यह सद्गुरु कबीर कहते हैं। विचार करो तो सारा दुख खतम। विचार करके खाओ, विचार करके बोलो, विचार करके काम करो, विचार करके व्यवहार करो कभी उलझन नहीं आयेगी।

यह मानव जीवन बहुत सौभाग्य का फल बताया गया है लेकिन इस सौभाग्य को पाकर लोग दुर्भाग्य बनाने में लगे हुए हैं। पूरा जीवन दुर्भाग्य में व्यतीत होता है। मनुष्य ऐसा प्राणी है जो मनन कर सकता है और दुखों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है लेकिन इस दुनिया में जितना दुखी आदमी है उतना दुखी कोई प्राणी नहीं है। सबसे ज्यादा दुखी आदमी है। जानवर के पास दुख कहां है। जानवर के पास भय, चिंता, शिकायत भी नहीं है। जानवर तो मस्त पेट भर गया फिर वहीं बैठे-बैठे सो रहा है। कल क्या खायेंगे यह भी चिंता नहीं है।

आदमी जब से पैदा हुआ तब से खाता आ रहा है लेकिन हमेशा सोचता है आगे क्या खाऊंगा। कितनी चिंता है आदमी को हमारे नहीं रहने पर हमारे घर वालों का, परिवार वालों का, बाल-बच्चों का क्या होगा! अनादि काल से हर घर चलता आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। कौन-सा घर है जिसका काम रुका है? जब हमारा जन्म नहीं हुआ था तब भी दुनिया चल रही थी। और जब हम नहीं रहेंगे तब भी दुनिया चलती रहेगी। किसी के बिना दुनिया का काम रुका है क्या! लेकिन अनावश्यक चिंता आदमी पाल लेता है कि मैं नहीं रहूंगा तो घर-परिवार कैसे चलेगा, कौन संभालेगा। लगता है कि आप ही संभाल रहे हैं। आप नहीं रहेंगे तो यह दुनिया गिर करके पाताल में चली जायेगी!

मिथ्या अहंकार, मिथ्या चिंता, मिथ्या भय में आदमी जी रहा है। जो करना चाहिए मोक्ष का, कल्याण का काम, वह काम नहीं करता है। जितनी चिंता उतना दुख आयेगा। जीवन सुख से जीने को थोड़े मिलेगा। लोगों की सोच को देखकर हंसी आती है। आदमी कितना गलत ढंग से सोचता है। जवानों की अपेक्षा बूढ़ों को ज्यादा चिंता रहती है। जवानों को चिंता नहीं होती है वह तो कमाता-खाता है, मस्त रहता है। चिंता बूढ़ों को ज्यादा रहती है जिन्हें जल्दी मर जाना है। जवानों को चिंता करनी चाहिए कि हमें बहुत दिन जीना है कुछ कमा कर रख लें लेकिन जवानों को चिंता नहीं है, चिंता बूढ़ों को है जिन्हें जल्दी मर जाना है।

बूढ़ों को चाहिए कि सब चिंता छोड़कर राम भजन में लगें। राम भजन करने के लिए ही मनुष्य जीवन मिला है। लेकिन बूढ़े राम भजन नहीं करते शिकायत में डूबे रहते हैं। बूढ़ों का जीवन दुखद क्यों होता है? शिकायत के कारण। बूढ़ों को चाहिए कि बहू-बेटे राय मांगें तो दे दे। उचित समझेंगे तो मानेंगे या नहीं मानेंगे। जो मिले वह खा ले, संतोष रखे। थोड़ा काम कर दे, बच्चों को घुमा दे और बैठ कर भजन करे तो बुढ़ापा सुख से कटेगा। लेकिन बूढ़े लोग बेटे-बहू की शिकायत करके अपने लिए दुख बना लेते हैं।

दुख और कहीं बाहर से नहीं होता है। बूढ़ों का तिरस्कार क्यों होता है? गलती बहू-बेटों की भी हो सकती है लेकिन कई जगह गलती बूढ़ों की होती है। हर बात में टोका-टोकी। अब आपका अधिकार नहीं रह गया है। अब घर के मालिक बेटे-बहू हो गये हैं। उन्हें जो करना है, करने दो। कुछ गलती होती है तो प्रेम से कह दो कि बेटा ऐसा नहीं होनी चाहिए। टोकते रहेंगे बार-बार तो तिरस्कार ही मिलेगा। इसलिए टोका-टोकी न करें, गम खायें। ज्ञान में, भजन में, भक्ति में मन को लगायें। इधर-उधर की व्यर्थ बातों को छोड़ें।

हमारा एक ही काम है दुखों की निवृत्ति। जो भी काम करें सबका फल होना चाहिए दुख का घटते जाना। यदि दुख घट रहे हैं, मन निश्चिंत, निष्फिक्र, निर्भय, सरल, शांत होता जा रहा है तो जीवन-यात्रा सही दिशा में चल रही है। किन्तु यदि उम्र बढ़ने के साथ-साथ चिंता, फिक्र, भय, असंतोष, शिकायत, उलझन, तनाव बढ़ते जा रहे हैं तो यात्रा गलत दिशा में हो रही है। जो कुछ भी कर रहे हैं गलत कर रहे हैं। अंत में पछतावा ही हाथ आयेगा। खैर, जो बीत गया वह बीत गया। अब वह लौटकर आने वाला नहीं है। अब भी सम्हल जायें। वही काम करें जिससे मन प्रसन्न, शांत, संतुष्ट, निर्भय और निश्चिंत हो, साथ-साथ दूसरों को भी सेवा, प्रसन्नता और अच्छी प्रेरणा मिले।

—धर्मेन्द्र दास

बीजक चिंतन

बगुला भक्तों से सावधान

शब्द-104

कैसे तरो नाथ कैसे तरो,
अब बहु कुटिल भरो॥ 1॥
कैसी तेरी सेवा पूजा कैसे तेरो ध्यान,
ऊपर उजल देखो बगु अनुमान॥ 2॥
भाव तो भुजंग देखो अति बिबिचारी,
सुरति सचान तेरी मति तो मंजारी॥ 3॥
अति रे विरोधी देखो अति रे सयाना,
छौ दर्शन देखो भेष लपटाना॥ 4॥
कहहिं कबीर सुनो नर बन्दा,
डाइनि डिम्भ सकल जग खन्दा॥ 5॥

शब्दार्थ—तरो= उद्धार होना। नाथ= स्वामी। कुटिल =कुटिलता, छल। बगु= बगुला पक्षी जो सफेद होता है तथा जलाशयों के निकट रहकर जलजंतुओं को खाता है तथा अपने छलावा के लिए प्रसिद्ध है। भुजंग=सांप। बिबिचारी= विविचारी, विचारहीन, कुकर्मी। सुरति= सुरत, ध्यान, मन। सचान= बाजपक्षी। मति= बुद्धि। मंजारी= बिल्ली। सयाना=बुद्धिमान, चालाक, धूर्त। छौ दर्शन= योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण। बन्दा= सेवक, दास, भक्त। डाइनि= डाइन, तथाकथित जादू करने वाली स्त्री, डरावनी सूरत की या दुष्टा स्त्री, तात्पर्य में माया। डिम्भ= दंभ, पाखंड। खन्दा= खा लिया, भटका दिया।

भावार्थ—हे स्वामियो! तुम लोगों का उद्धार कैसे होगा? क्योंकि अब तो तुम लोगों में बड़ा छलावा तथा खोटाई भर गयी है॥ 1॥ देवताओं तथा ईश्वर के प्रति तुम्हारे द्वारा की जाने वाली सेवा तथा पूजा कैसी दिखावापूर्ण हो गयी है और ध्यान-योग भी कैसे छल से भरा है! बगुला-पक्षी के समान तुम लोग कपटी हो गये हो जो ऊपर से तो उजले तथा संयत दिखते हैं, परन्तु भीतर से पर-हिंसा की कालिमा से भरे रहते हैं॥ 2॥ देखो, तुम्हारे भाव तो सांप जैसे विषधर, अत्यन्त विचारहीन एवं कुकर्मी हैं और तुम्हारी सुरत और बुद्धि हिंसक बाजपक्षी तथा बिल्ली की तरह हैं॥ 3॥ देखा जाता है कि षटदर्शनी एवं नाना संप्रदायों के लोग एक दूसरे के अत्यन्त विरोधी बने राग-द्वेष का बाजार गरम कर रहे हैं। ये अपने-अपने मतवाद को फैलाने में खूब चालाक हैं और अपने-अपने वेष के अभिमान में लिपटे हैं॥ 4॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे मनुष्यो, हे भक्तो! सुनो, इस माया और माया के सहायक दंभ ने सारे संसार को खा लिया है॥ 5॥

व्याख्या—प्रथम पंक्ति में ही आया है "कैसे तरो नाथ कैसे तरो" यह नाथ शब्द नाथपंथियों से सम्बन्ध रख सकता है जिनका उत्तरी भारत में बड़ा प्रचार था तथा आगे चलकर काफी विकृत हो गया था। कबीर साहेब के समय में नाथपंथियों का ज्यादा उज्ज्वल स्वरूप नहीं था, लेकिन यहां उनका भाव केवल उन्हीं के लिए नहीं है, किन्तु उन समस्त धार्मिकों के लिए है जो धर्म के वेष बनाने में तो आगे हैं, परन्तु करनी में घिनौने हैं। कबीर साहेब ऐसे संदर्भ में प्रायः षटदर्शन का नाम लेते हैं। षटदर्शन में योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण आते हैं। योगी में सिद्ध, नाथ आदि; जंगम में लिंगायत, शिवाचारी; सेवड़ा में जैनी तथा बौद्ध, संन्यासी में दसनामी—तीर्थ, आश्रम, सरस्वती, भारती, वन, आरण्य, पर्वत, सागर, गिरि और पुरी; दरवेश में सामी संप्रदाय—ईसाई, यहूदी, मुसलमान आदि के साधु, पादरी, फकीर आदि; ब्राह्मण में उनकी सभी शाखाओं के आचार्य आते हैं। परन्तु षटदर्शन का लाक्षणिक अर्थ है संसार के समस्त धार्मिक वेषधारी जो विशेषतः धर्मप्रचारक तथा पूज्य हैं।

भीतर कुछ तथा बाहर कुछ ऐसे कपट भरे दोहरे व्यक्तित्व के कबीर साहेब घोर विरोधी थे। वे दिखावे से पूर्ण धार्मिक वेषधारियों पर दुख प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे स्वामी लोगो, आप लोगों का उद्धार कैसे होगा! आप लोगों के वेष तो बड़े पवित्र दिखते हैं, परन्तु भीतर में बड़ी कुटिलता भरी है। धर्म का स्वरूप अन्दर-बाहर एक तथा सरल होता है, परन्तु तुम लोगों में देखा जाता है तो बड़े-बड़े छल-कपट भरे हैं। जो कपटाचार साधारण

आदमी में भी निंदनीय है वह तुम धर्माचार्यों में पूर्ण है। तुम्हारे उद्धार की बात ही दूर है, तुम्हारे तो व्यवहार भी पवित्र नहीं हैं। जब तुम खुद इस प्रकार हो, तब संसार का तुम कौन-सा कल्याण कर सकते हो?

"कैसी तेरी सेवा पूजा कैसे तेरो ध्यान" सेवा तथा पूजा में कर्म तथा उपासना के क्षेत्र आते हैं तथा ध्यान में ज्ञान का क्षेत्र आता है। कर्मकांडी तथा उपासक लोग अनेक कल्पित देवी-देवता तथा ईश्वर मानी गयी मूर्तियों की सेवा करते हैं। वे उन्हें सुलाते, जगाते, नहलाते, खिलाते, पिलाते, पंखा करते, आग तपाते, फूल-मालाएं एवं नाना वस्तुएं चढ़ाते, वन्दना तथा आरती करते इस प्रकार सेवा-पूजा में लगे रहते हैं। यद्यपि पूजा-सेवा के उक्त सारे आलंबन काल्पनिक हैं, तथापि कोई केवल चित्त शुद्धि के लिए सच्चे हृदय से करता है तो उसका कुछ-न-कुछ सात्त्विक मनोरंजन होता है। आलंबन कुछ हो, परन्तु उसके विषय में उसका दिल सच्चा होता है। किन्तु जहां हृदय ही कपटपूर्ण है वहां तो सब कुछ दिखावा के लिए किया जाता है। लोग मुझे धार्मिक समझें, भक्त तथा उपासक समझें, लोग धन चढ़ावें इन सबके लिए ही यदि यह सब किया जाता है तो सेवा-पूजा को केवल भोगों का साधन बनाना हुआ। इसी प्रकार लोगों को दिखाने के लिए ध्यान करना और भीतर मान-भोग की कामना रखना, यह सब अनर्थ है। इसीलिए साहेब ऐसे लोगों से पूछते हैं कि तुम्हारे द्वारा की जाती हुई सेवा-पूजा कैसी है और यह ध्यान भी कैसा है? क्योंकि तुम्हारा जीवनस्तर जब देखा जाता है तब "ऊपर उजल देखो बगु अनुमान" अर्थात तब यही अनुमान होता है कि तुम बगुले के समान ऊपर से तो स्वच्छ धार्मिक हो, परन्तु भीतर काले हो। बगुला-पक्षी जलाशय के निकट बैठता है या जलाशय में भी विचरता है। वह कभी-कभी अर्ध-उन्मीलित नेत्रों द्वारा एक पैर के बल पर ध्यान में बैठा महायोगी लगता है, परन्तु वह यह सब मछलियों को पकड़ने की सुविधा के लिए करता है। इसी प्रकार तुम्हारे द्वारा किये जाते हुए सेवा-पूजा तथा ध्यान आदि लोकदिखावा के लिए हैं, स्वयं सेवा-पूजा पाने के लिए और भौतिक भोगों के लाभ के लिए हैं अतः यह तुम्हारा पतन-पथ है।

"भाव तो भुजंग देखो अति बिबिचारी, सुरति सचान तेरी मति तो मंजारी।" भाव तुम्हारे सांप-जैसे हैं। सांप ऊपर से कोमल, चिकने और सुंदर दिखते हैं, परन्तु उनके मुख में विष होता है। वे अवसर पाते ही मनुष्य को डसकर मार डालते हैं। तुम्हारा भाव भी ऐसा है। तुम केवल देखने में स्वच्छ हो, मन तुम्हारा विषधर है। तुम अत्यन्त विचारहीन, बदचलन तथा कुकर्मी हो। धर्म के नाम पर किस तरह लल्ला-लल्ली बनकर तीर्थों, पुरियों, देव-मंदिरों में दुराचार होते हैं यह सर्वविदित है। रास के नाम पर, लीला के नाम पर, प्रेमा-भक्ति के नाम पर, अमरौली-बज्रौली साधकर योग के नाम पर "भग बिच लिंग लिंग बिच पारा, जो न खसै सो गुरु हमारा" कहकर धार्मिक अपराधी सारा कुकर्म करते हैं। इतना ही नहीं, ज्ञान के नाम पर स्वयं को निर्लिप्त आत्मा एवं ब्रह्म बताकर तथा "भोगे युवति सदा संन्यासी" कहकर धर्म के चोंगाधारी कुकर्म की धारा में बहते हैं। साहेब कहते हैं कि तुम्हारा मन बाजपक्षी के समान शिकार पर ही झपट्टा मारने वाला है। बिल्ली जमीन पर दुबकी पड़ी रहती है और चूहे को देखते ही उस पर कूद पड़ती है। तुम्हारी दशा भी ऐसी ही है। तुम देखने में विनम्र, भक्त, ज्ञानी, योगी आदि बनते हो, परन्तु तुम्हारे आचरण क्रूर, भोगपरायण तथा भौतिकवादी है।

"अति रे विरोधी देखो अति रे सयाना, छौ दर्शन देखो भेष लपटाना।" देखा जाता है कि इन धार्मिक कहे जाने वाले संप्रदायों में परस्पर अत्यंत विरोधी विचार रखने वाले, एक दूसरे से कटा-कटी करने वाले और द्वेष की आग भी उगलने वाले होते हैं। विचारों की भिन्नता तो संसार का स्वभाव है, परन्तु इसको लेकर राग-द्वेष, कलह, लड़ाई-झगड़े, शास्त्रार्थ के नाम पर वाकयुद्ध, हिंसा, हत्या आदि करके इन सांप्रदायिक दरिन्दों ने धर्म को कलंकित कर दिया है। इन सांप्रदायिक स्वामियों में एक-से-एक ऐसे भी सयाने हैं, चालाक एवं महाधूर्त हैं, जो स्वयं को ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि ये मानो सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ तथा विशेष अवतार हैं। ये जो चाहें सो कर सकते हैं। इस अपने मिथ्या दैवी एवं ईश्वरीय चमत्कार में वे लोगों को फंसाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। आज

भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। आज भी धार्मिक धूर्तों का एक दल भारत में अवतार बना बैठा है। ये सांप्रदायिक लोग केवल वेष बनाने में लगे हैं। भक्ति, कर्मों की उज्ज्वलता, सच्चरित्रता, ज्ञान, योग, ध्यान, त्याग, शांति आदि को छोड़कर केवल धार्मिक वेष बनाने तथा उसके बल पर पुजवाने के चक्कर में पड़े हैं।

"कहहिं कबीर सुनो नर बन्दा, डाइनि डिम्भ सकल जग खन्दा।" साहेब कहते हैं कि हे सन्तो ! हे भक्तो ! सुनो और सावधान रहो। डाइन और दंभ ने सारे संसार को खा लिया है। इस पंक्ति में डाइन और डिम्भ ये दो शब्द ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। लोगों ने काल्पनिक चुड़ैल को डायन या डाइन कहा है। लोगों का अंधविश्वास है कि कुछ ऐसी स्त्रियां होती हैं जो भूत-प्रेत एवं दैवीशक्ति सिद्ध किये रहती हैं, या वे मंत्र-बल सिद्ध रखती हैं। ऐसी स्त्रियां अपनी इन शक्तियों से जिसको चाहें उन्हें बीमार कर सकती हैं, मार सकती हैं या उनकी बड़ी-से-बड़ी हानि कर सकती हैं। इन्हें लोग डायन या डाइन कहते हैं। लेकिन यह सर्वथा काल्पनिक है। यदि कोई भयंकर एवं क्रूर स्त्री हो उसे ही डाइन कह सकते हैं। चुड़ैल भी एकदम झूठी धारणा है। कुछ स्त्रियों को लोग डाइन या टोनही आदि मानते हैं यह भी केवल अज्ञान का फल है। यहां कबीर साहेब ने तो माया को डाइन कहा है। माया है सांसारिक लिप्सा। सांसारिक भोगों की वासना ही माया है और इसको पूर्ण करने के लिए लोग दंभ करते हैं। दंभ कहते हैं दिखावा को। यहां दंभ अधिक प्रासंगिक है। क्योंकि जो धर्म का चोंगा पहनकर विषयों में डूबे हैं उनका तो प्रतिष्ठित बने रहने का दंभ ही आधार है। वे धर्म एवं वेष का दिखावा करके ही उसकी आड़ में स्वार्थ एवं भोग साधते हैं। साहेब कहते हैं कि हे नर बंदो ! हे मनुष्यो एवं भक्तो ! इन-जैसे स्वामियों से सावधान रहो। जो व्यक्ति स्वयं निष्कपट नहीं, सदाचारी नहीं और अपने सिद्धांतों के लिए सच्चा नहीं, वह स्वयं डूबा है। फिर वह तुम्हारा क्या उद्धार कर सकता है ! ऐसे स्वामियों, धार्मिकों एवं उद्धारकों से सदैव दूर रहना।

ध्यान रहे ! सब समय सच्चे सन्त एवं धर्मपरायण लोग रहे हैं जो जगत में तरण-तारणरूप रहे हैं। उन्होंने स्वयं अपना कल्याण किया है तथा वे संसार के प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। आज भी ऐसे महापुरुषों की कमी नहीं है, हमें सच्चे दिल से खोजी बनना चाहिए। परन्तु धूर्तों का जाल पहले भी ज्यादा था और आज भी ज्यादा है। उनसे सावधान रहकर हमें सच्चे संत और सद्गुरु की खोज कर उनकी शरण लेनी चाहिए। ❑

निजस्वरूप में लौट आना है

रचयिता—जितेन्द्र दास

अनमोल जीवन की बेला में,
कल्याण अपना कर जाना है।
विषयों से विमुख होकर,
आत्मलीन हो जाना है॥ 1॥

संसार है परिवर्तनशील,
सारे सम्बन्ध छूट जाना है।
पांच तत्त्व की काया भी,
मिट्टी में मिल जाना है॥ 2॥

काम क्रोध अरु लोभ मोह,
अभिमान तज जाना है।
अनादि के विषय भोगों से,
छुटकारा अब पाना है॥ 3॥

अनुकूल प्रतिकूल स्थिति,
जीवन में आना जाना है।
दुःख की विषम स्थिति में,
कभी नहीं घबराना है॥ 4॥

सावधान मेरे यारों,
बोध विचार जगाना है।
जितेन्द्र यही अंतिम बेला,
निजस्वरूप अटल हो जाना है॥ 5॥

प्रवचन

यह मन तो निर्मल भया

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 1-6-2005 को कबीर पारख आश्रम, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! सद्गुरु कबीर ने कहा है—

यह मन तो निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर॥

मन जब गंगा पानी के समान निर्मल हो गया तब पीछे-पीछे हरि घूमते और कहते हैं कि कबीर साहेब मैं आपकी क्या सेवा करूं। उनका यह कथन लाक्षणिक है क्योंकि हरि कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो किसी के पीछे-पीछे घूमे। वस्तुतः हमारा मन ही भगवान बनता है और शैतान भी बनता है। हमारा व्यवहार जब गंदा हो जाता है तब हमारा मन शैतान बनता है और हमारा व्यवहार जब अच्छा होता है तब हमारा मन भगवान बनता है। व्यवहार का परिणाम ही हमारा मन है।

मन को सुलझाने के लिए अध्यात्म है। ध्यान-चिंतन सब कुछ मन को ठीक करने के लिए है। ध्यान-चिंतन से और निरंतर शोधने से हमारा मन ठीक होता है। यह एकबारगी ठीक नहीं होता है बल्कि करते-करते होता है। किसी आदमी को दिनभर के लिए छुट्टी दे दी जाये और उससे कह दिया जाये कि जाओ भजन-ध्यान करो तो वह नहीं कर पायेगा। केवल छुट्टी ले लेना और हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना भजन नहीं है।

शरीर में रजोगुण है, तमोगुण है और सतोगुण है। इन तीनों का व्यवहार है। रजोगुण क्रिया प्रधान है। तमोगुण आलस्य-निद्रादि का स्थान है और सतोगुण ज्ञान और प्रसन्नता है। प्रकाश सतोगुण है, अंधकार तमोगुण है लेकिन सोने के समय तमोगुण की ही जरूरत है। जब हम जलती बत्ती को बुझा देते हैं तब सोने में अच्छा रहता है। अंधकार तमोगुण है लेकिन उसकी जरूरत है। रजोगुण क्रियाशीलता है और उसकी भी जरूरत है क्योंकि जो मैं बोल रहा हूं यह रजोगुण ही है और इसकी जरूरत है। बोलना क्रिया है और क्रिया रजोगुण है।

यह मान लेना गलत है कि कोई दिनभर छुट्टी ले ले तो इससे वह साधना करेगा। यदि पास में करने को कुछ काम न हो तो इससे वह साधक नहीं हो जायेगा। कोई जिम्मेदारी न ले, कोई काम न करे तो वह जीवन्मुक्त नहीं हो जायेगा क्योंकि प्रवृत्ति में निवृत्ति है और निवृत्ति में प्रवृत्ति है। सेवा-सहयोग का काम करते हुए, जिम्मेदारी को निभाते हुए आध्यात्मिक काम करो। गलती यही है कि आदमी केवल व्यवहार ही में डूब जाता है। वह काम-धंधा करता है और जैसे फुरसत पाता है तैसे प्रपंच की वार्ता शुरू करता है या ऐसे-ऐसे काम करता है जिसकी जरूरत नहीं रहती है।

लोग बैठते हैं तो प्रपंच वार्ता शुरू कर देते हैं और बिलावजह इधर-उधर की बात करने लगते हैं तो साधना कहां होगी! इसलिए इन सबमें संयम की जरूरत है। अपने को चारों तरफ से संभालने की जरूरत है क्योंकि समय भागा जा रहा है। अपने समय का नियोजन व्यवहार और परमार्थ के काम में करो। टी.वी. आजकल महारोग हो चला है। लोग टी.वी. के सामने बैठ जाते हैं और जो कुछ उलटा-पलटा आया उसी को देखते रहते हैं। अखबार पढ़ते हैं तो एक-एक, दो-दो घंटा उसी में लगा देते हैं। टी.वी. में कोई खास चीज हो तो थोड़ा-मोड़ा उसको देख लो और कामभर का अखबार भी पढ़ लो लेकिन उसी में अपने अमूल्य समय को न गंवाओ। अपना जो जरूरी काम है उसे करो और साधना भी करो।

दिनभर छुट्टी लिये रहने से कोई साधना नहीं कर सकता। कोई कुछ जिम्मेदारी न ले तो उसका वैराग्य बढ़ नहीं जायेगा। वैराग्य सेवा, श्रद्धा और विवेक से

बढ़ता है। कितने लोग ऊलजलूल काम करते रहते हैं और कहते हैं कि हम तो सेवा करते हैं। रात-दिन प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति है तो यह भी उलटा है लेकिन कुछ प्रवृत्ति न लेना कोई कल्याणकारी नहीं है। जीवन में बैलेंस यानी संतुलन तभी रहेगा जब व्यवहार का काम किया जाये और अध्यात्म का भी काम किया जाये। व्यवहार की शुद्धता की जरूरत है और अध्यात्म के अभ्यास की जरूरत है।

प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों के बीच से आदमी हरदम गुजरता है। उनका बरताव-व्यवहार है और वह इतना प्रबल है कि सुबह से रात्रि तक जबतक सो न जाओ तबतक प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियां ये तीनों सामने रहते हैं और इन्हीं में गड़बड़ करके मन अशांत होता है।

मन खाली ध्यान लगाने से शांत नहीं होगा। ज्ञान की बातें केवल सुन लेने मात्र से मन शांत नहीं होगा किंतु उसकी तली में जो दोष हैं उनको दूर करना पड़ेगा और अपने व्यवहार को शोधना पड़ेगा। कहीं उलटा-पलटा व्यवहार करे और ध्यान करने बैठ जाये तो ध्यान लगेगा ही नहीं। व्यवहार सही करे तब ध्यान लगेगा। सही व्यवहार है अपने मन-इन्द्रियों को चंचल न करना और दूसरे को पीड़ा न देना।

जिस बात, जिस ख्याल और जिस काम में अपना मन और अपनी इन्द्रियां चंचल हों और अगला आदमी पीड़ित हो वह काम न करें। अब कहीं किसी को हिदायत दी गयी, रास्ता दिखाया गया, बात समझायी गयी और उसमें वह पीड़ा मान लिया तो वह उसकी भूल है। व्यवहार में कहना-सुनना और बताना, आदेश-निर्देश लेना-देना होता ही है। उसमें किसी को दुखी नहीं होना चाहिए। किसी को दुख देने की भावना और अपने मन-इन्द्रियों को चंचल करने में आनन्द मानने की भावना गलत व्यवहार है और इस गलत व्यवहार को लेकर किसी का मन शीतल नहीं हो सकता।

रात-दिन का जो व्यवहार है पहले उसको ठीक करना होगा। मैंने अभी कहा कि प्रातः से लेकर रात्रि में शयन करने के समय तक व्यवहार रहता है और उन सभी जगहों में अगर आप सावधान नहीं हैं तो आपका मन चंचल हो जायेगा और आप उसको लाख प्रयत्न करके भी स्थिर नहीं कर सकते हैं। व्यवहार को जब ठीक करोगे तब वह ठीक होगा।

तराजू के एक पलड़े में बाट रहता है और एक में जिस सामान को तौलना होता है वह रहता है। अगर दोनों बराबर हैं तो बीच की सूई बिलकुल खड़ी हो जाती है और अगर बाट ज्यादा है तो बाट की तरफ सूई झुक जायेगी और अगर सामान ज्यादा वजन का है तो सूई उस तरफ झुक जायेगी। सूई को पकड़कर आप सीधी करो तो गलत होगा। बाट और माल को संतुलित करो तो सूई सीधी हो जायेगी। इसी प्रकार केवल मन को पकड़कर ठीक करना चाहो तो कैसे ठीक कर पाओगे। मन को ठीक करने के लिए पहले इन्द्रिय और विषय इन दोनों को ठीक करो। इन्द्रिय और विषय ही बाट और पदार्थ हैं। इन्द्रियों में आंख, नाक, कान, जीभ, चाम ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और ये बाट हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांच विषय हैं जो पदार्थ हैं। इन्हीं पांच विषयों में सारा संसार है और इनसे अलग कुछ पदार्थ रह नहीं जाता है। अपने जीवन में इनका प्रयोग संतुलित हो तब मन ठीक रहेगा और अगर असंतुलन होगा तो मन संतुलित नहीं होगा।

इन्द्रियों का उनके विषयों से जो व्यवहार होता है वह ठीक हो तो मन संतुलित होगा। जैसे यह मकान दिखाई देता है तो यह एक विषय है। विषय का मतलब है चीज, वस्तु, पदार्थ। इन जड़ पदार्थों का व्यवहार इन्द्रियों से होता है। इनका व्यवहार जब ठीक रहेगा तब मन ठीक रहेगा। जहां जिम्मेदारी हो उसको विनम्रता और शालीनता से निभाओ।

कुछ साधक समझते हैं कि अगर हम मनमानी करें, बात न मानें, मनमानी घूमें, कुछ काम न करें तब हमें फक्कड़मस्त साधक माना जायेगा लेकिन ऐसे लोग मूर्ख होते हैं क्योंकि वे समझते ही नहीं हैं। ऐसे लोगों का मन शांत नहीं हो सकता है। उनको सोचना चाहिए कि

उनका जो शरीर है वह किसी की सेवा से पला है। उनको जो भोजन और वस्त्र मिलते हैं वे किसी के श्रम से ही मिलते हैं। उन्हें बिजली का जो प्रकाश मिलता है और पंखे की जो हवा मिलती है वह भी किसी की देन है। वे छाया में रहते हैं तो वह भी किसी के परिश्रम का ही परिणाम है। जिस सड़क पर वे चलते हैं उसको बहुत लोगों ने बनाया है। गिनकर कहां तक कहा जाये, पूरे संसार का उपकार हमारे ऊपर है और हम उद्दण्ड होकर साधक बनना चाहते हैं यह कितना बड़ा अज्ञान है। अरे भाई! झुककर और विनयी होकर रहो। घर-गृहस्थी में हो तो मां-बाप और स्वजनों का आदर करो और वहां की जिम्मेदारी ठीक से निभाओ। विरक्ति मार्ग में हो तो गुरुजनों का आदर करो और ठीक से उनकी आज्ञा का पालन करो और निभाओ। जहां भी हो वहां की जिम्मेदारी निभाओ।

पति-पत्नी हो तो एक दूसरे से मिल-जुलकर रहो। एक दूसरे से राय लो। जहां वार्ता बन्द हो जाती है वहां सब खराब हो जाता है। जब पति-पत्नी में वार्ता नहीं होती है तब कसैला वातावरण बनता है। पिता-पुत्र में, भाई-भाई में जहां कहीं भी परस्पर वार्ता बन्द होगी, एक साथ बैठना, बात करना, हंसना-बोलना बन्द होगा तो जहर शुरू हो जायेगा क्योंकि मन में जहर है इसलिए दूसरे के पास बैठ नहीं सकते, बात नहीं कर सकते। खुश नहीं हो सकते तो मूल ही खराब है। फिर साधना क्या करेंगे। इसलिए व्यवहार प्रबल है और व्यवहार को कोई हटा नहीं सकता।

एक ऐसे संत को मैंने काशी में देखा जो बोलते नहीं थे और नंगे पड़े रहते थे। कुछ बिछाते नहीं थे। एक फर्श पर पड़े रहते थे। बहुत मोटे हो गये थे। हिलते-डुलते नहीं थे। पोस्ट आफिस का जो प्रवेश द्वार था वहीं लाबी में वे पड़े रहते थे।

कई बार मैं देखता था कि वे कागज पर कुछ लिखते रहते थे। कलम, स्याही और कागज के टुकड़े पोस्ट आफिस वाले लोग रख देते थे लिखने की उनकी रुचि देखकर। बैठकर या कभी-कभी लेटे-लेटे कुछ लिखते रहते थे। वह कुछ अक्षर नहीं रहता था। लगता था कि अपने मन को बहलाने के लिए वे कुछ करते थे।

कहने का मतलब है कि इस ढंग से रहनेवाले को भी खाना-पीना, छाया जरूरी है और यह अपवाद है। ऐसा सब नहीं रह सकते हैं और न ऐसे सबको रहने की जरूरत ही है। नंगे रहना, पड़े रहना, निष्क्रिय रहना अपवाद है, नियम नहीं है।

अंततः आदमी को व्यवहार लेना पड़ता है। इसलिए जो जहां रहें मर्यादा का पालन करें और संयम से रहें। मैंने आपसे कहा कि प्रवृत्ति में निवृत्ति है और निवृत्ति में प्रवृत्ति है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है इसको समझो। झुककर रहोगे, दूसरे का आदर करोगे, जिम्मेदारी निभाओगे, जिम्मेदारियां लोगे तो आपका जीवन निर्मल बनेगा और कहीं निठल्ले रहोगे तो मन निर्मल नहीं बनेगा।

साधते-साधते मन की दशा ऐसी होती है कि आदमी कुछ भी न करे, हरदम ऐसे ही पड़ा रहे तो भी उसका मन बिलकुल ठीक रहेगा। और यह बहुत परिश्रम का फल होता है लेकिन ऐसे संत पुरुष भी कुछ न कुछ करते हैं।

अभी मैंने कुछ महीने पूर्व सुना कि ऋषिकेश में एक संत हैं जो कमर में हल्का-सा कपड़ा पहने रहते हैं और नंगा रहते हैं। जहां वे रहते हैं वहां फूल-फुलवारी है तो उसमें कुछ न कुछ करते रहते हैं। लोग वहां आते हैं वे आत्मज्ञान पर दो बार व्याख्यान देते हैं। वे ज्यादा बोलते नहीं हैं और अच्छी रहनी के संत हैं। बारी-फुलवारी में काम करते रहने से उनके शरीर से श्रम होता है और कुछ सेवा भी हो जाती है। निठल्ला रहना कोई साधना नहीं है। श्रम करना साधना के विरुद्ध नहीं है। विरुद्ध वहीं हो जाता है जहां तेली के बैल की तरह पेरते रहे।

तेली के बैल पहले चलते थे। अब तो मशीनें हो गयी हैं लेकिन पहले के जमाने में तेली लोग बैल रखते थे। उसकी आंखों में ढक्कन लगाकर उसको कोल्हू में

जोत देते थे और एक ही परिधि में वह दिन भर घूमता रहता था। वैसे ही दिनभर केवल प्रपंच में घूमते रहना, एकान्त क्षण न होना, अकेले में न बैठना, चिंतन न करना, स्वाध्याय न करना, ध्यान न करना, अपने विषय में न सोचना कि हमारा मन किधर है, हमारी वाणी किधर है, हमारे कर्म किधर हैं। हम क्या कर रहे हैं। हमारी क्या मानसिक दशा है। इस पर ख्याल न होना बहुत गलत है। इसलिए इसमें संतुलन होना चाहिए।

अति का भला ना बोलना, अति की भली न चूप।

अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥

यह कबीर साहेब की साखी है। बहुत बोलना अच्छा नहीं है लेकिन बिलकुल चुप होना भी अच्छा नहीं है। एकदम धूप-धूप होना ठीक नहीं है और बहुत बरसना भी अच्छा नहीं है। मध्य का होना चाहिए। व्यवहार, जिम्मेदारी, सेवा, शिष्टता, विनय, सभ्यता इन सबकी महती आवश्यकता है। सच्चा साधक वही हो सकता है जो चाहे विरक्ति में हो चाहे गृहस्थी में, बड़े-छोटे सबका अदब रखते हुए सेवापरायण हो। इससे उसका चित्त शुद्ध होगा और शुद्ध चित्त ही संतुलित होता है। उसी में ध्यान-साधना और अध्ययन सभी फलीभूत होते हैं। जो सेवापरायण नहीं होता है उसका चित्त शुद्ध नहीं होता है, चंचल होता है। वह जो कुछ भी करे दिखावा होता है, ज्यादा फल नहीं होता है।

खेत को गोड़-जोतकर, खाद-पानी डालकर, काफी सेवा करने पर उसमें उर्वरा शक्ति आती है और तब उसमें बीज डालने से फसल अच्छी होती है। कोई बिना कमाई किये ही जीवन में बीज डाल दे तो कोई मतलब नहीं होता है। हमारा हृदय खेत है और इसकी कमाई सेवा, स्वाध्याय और साधना है। इन्हीं तीन में कहें तो कुल हो जाता है। सेवा, स्वाध्याय और साधना त्रिवेणी है। सेवा का बहुत व्यापक स्वरूप है। सेवा के नाम पर भी बड़ी-बड़ी गलतियां हैं। कितने लोग हैं जो घर छोड़कर साधु बन गये, संस्था बना लिये लेकिन राजनेताओं और धनियों के पीछे बस्ता बांधे चक्कर काटते रहते हैं और कहते हैं कि यह बनाना है, वह बनाना है। यह सेवा करना है, वह सेवा करना है। इसी के पीछे वे भाग रहे हैं। जिसके लिए घर छोड़े वह भूल गया। अब जो धनियों और नेताओं के पीछे घूमता रहेगा तो उसका रहा-सहा वैराग्य भी समाप्त हो जायेगा। इसलिए भाई, घर छोड़े हो तो साधना करो। संस्था बनाकर कागज का बण्डल बांधे तमाम आशा-तृष्णा में भटकना क्या यह कोई समझदारी है! यह कोई समझदारी नहीं है। यह तो सेवा के नाम पर अपने को धोखा देना है।

कोई गृहस्थ ही है और रात-दिन सेवा ही करता रहे, अपने मन को शांत करने का काम न करे तो यह ठीक नहीं है। सेवा करना ठीक है लेकिन सेवा के नाम पर साधना में बैठे ही न, एकान्त क्षण ही न ले, स्वाध्याय और साधना ही न करे तो उसकी सेवा अधूरी है। सेवा का फल होना चाहिए ज्ञान, ज्ञान का फल होना चाहिए ध्यान, ध्यान का फल होना चाहिए त्याग और त्याग का फल शांति है जो अपने आप आती है। सबका एक क्रम है। बिना क्रम के काम नहीं होता। इसलिए सब लोग सेवापरायण हों लेकिन सेवा के नाम पर स्वाध्याय और ध्यान न करना बहुत गलत है और स्वाध्याय और ध्यान के नाम पर सेवा न करना भी गलत है।

कोई कहे कि मैं तो ध्यान कर रहा हूं और सेवा बिलकुल नहीं करूंगा तो गलत कर रहा है। सेवा, स्वाध्याय और ध्यान या कह लो साधना क्योंकि साधना और व्यापक है। ध्यान तो एक बात है—चित्त को एकाग्र करना और साधना का अर्थ है चिंतन करना, किसी भी दोष को दूर करने के लिए उसपर गहराई से सोचना और ध्यान करना। इसप्रकार साधना का क्षेत्र लम्बा हो जाता है।

किसी को क्रोध ज्यादा आता है तो अकेले में बैठकर क्रोध पर विचार करना चाहिए कि क्यों क्रोध आता है। क्रोध के मूल में कामना और अहंकार होता है। अहंकार ज्यादा है और अहंकार में ठेस अगर लगती है तो क्रोध आता है। या कामना है तो उसमें भंग पड़ने

पर क्रोध आता है। इसपर विचार करना और अपने अहंकार को मारना, कामना पर संयम करना जरूरी है। जो कामनाएं उठें उन्हीं के पीछे भागते रहो तो तकलीफ के सिवा कुछ न होगा। यह तो मन की शैतानीयत है। पता नहीं कि वह क्या-क्या सोच लेता है। ''कबहु मन रंग तुरंग चढ़ै, कबहु मन सोचत है बन का।'' मन पर संयम करने की जरूरत है। जो इच्छाएं उठें उन्हीं के पीछे भागनेवाला कभी सुखी नहीं होगा। इसलिए मन को समझकर काम करें, उसको संभालकर काम करें।

बात सेवा, स्वाध्याय और साधना की की जा रही थी। सेवा में स्थूल परिश्रम है। स्वाध्याय और साधना में सूक्ष्म परिश्रम है और तीनों के बिना जीवन की पूर्णता न होगी। जो सेवा को छोड़कर केवल स्वाध्याय और साधना को ही श्रेय देता है वह ठीक नहीं है। कुछ ऐसे साधक होते हैं जो मोटा काम नहीं करना चाहते हैं। मोटा काम करने में उनको तौहीनी लगती है।

हमारे यहां भारतवर्ष में हजारों वर्षों से यह भ्रम है कि जो मोटा काम करे वह छोटा आदमी है। हम अपने को सनातनधर्मी मानते हैं। हिन्दू शब्द तो बहुत पीछे आया है लेकिन ''आर्य'' शब्द वैदिक है। ''हिन्दू'' शब्द तो आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व से है। लगता है कि बुद्ध के बाद ''हिन्दू'' शब्द का प्रचलन बढ़ा है। वेदों में और वैदिक साहित्य में ही नहीं रामायण और महाभारत में भी ''हिन्दू'' शब्द नहीं है लेकिन ''आर्य'' शब्द है और वह पुराना है। सनातन कह देने से और गंभीरता आती है। हम लोग भारतीय हैं। हम लोग सनातन में जायें तो वेद हमारा मूल ग्रंथ है और वेद के सभी ऋषि कर्मकर हैं। वे मोटा काम करते हैं। वेद के ऋषि गाय चराते हैं, हल चलाते हैं, व्यापार करते हैं, धान कूटते हैं, भाड़ भूजते हैं, दवाई कूटते हैं और युद्ध भी करते हैं। सब काम करते हैं।

वैदिक ऋषि श्रमशील हैं और काम करने को तुच्छ नहीं मानते हैं। यह तो वर्णव्यवस्था ने भारतवर्ष को यह रोग दिया कि जो मोटा काम करे वह छोटा है। जो ब्राह्मण हो वह हाथ-पैर न हिलाये, पूजा-पाठ कर ले बस। वह पुनीत है और जो खेतों में काम-धाम करते हैं वे मोटे हैं और अशुद्ध हैं। समाज को बिगाड़ने का उन्होंने बड़ा बढ़िया तरीका अपनाया। जैसे कि एक किसान के खेत में चार आदमियों ने मिलकर गन्ना तोड़ा। उनमें एक ब्राह्मण था, एक क्षत्रिय था, एक वैश्य था और एक चौथा शूद्र था। किसान अकेला था। उसने सोचा कि इन चारों को एक साथ अगर मैं दण्डित करूं तो ये चारों मिलकर मुझे ही कूट डालेंगे। इसलिए पहले इनमें फूट डालना चाहिए फिर एक-एक को कूटना चाहिए। उसने फूट डालने की रणनीति तय की और पहले शूद्र के पास जाकर उससे कहा कि तुम यह बतलाओ कि यह तो ब्राह्मण है हमारे देवता हैं। ये क्षत्रिय हैं हमारे राजा हैं। ये भी वैश्य हैं देव हैं लेकिन तुम शूद्र होकर गन्ना क्यों तोड़े। ऐसा कहा और उसको दो डण्डा मार कर खदेड़ा।

उसके बाद किसान ने वैश्य से कहा कि यह तो हमारे ब्राह्मण देवता हैं और पूज्य हैं ये चाहे जो करें इनके सामने मुझे अपना सिर झुकाना है और ये क्षत्रिय हैं और हमारे राजा हैं। लेकिन तुम बनिया होकर गन्ना क्यों तोड़े। ऐसा कहकर उसने उसको भी पीटा। वह भी पिटकर जब भग गया तब किसान ने क्षत्रिय से कहा कि ब्राह्मण को कुछ नहीं कह सकता। तुम क्षत्रिय होकर गन्ना क्यों तोड़े। ऐसा कहा और उसको भी पीटा। अंतिम में ब्राह्मण की ओर किसान घूमा और कहा—कहो ब्राह्मण देवता! तुम ब्राह्मण बनते हो और गन्ना तोड़ते हो। उसको भी उसने पीटा। इस प्रकार भेद डालकर चारों को पीटा।

वर्णव्यवस्था के कुचक्र ने हिन्दू समाज को ऐसे ही भेद डालकर पीटा है। शूद्र को कहा गया कि वे तुच्छ हैं। बनिया उससे ऊंचे हैं। क्षत्रिय उनसे ऊंचे हैं और ब्राह्मण सबसे ऊंचे हैं। लोभ दे दिया कि ब्राह्मण ऊंचे हैं। क्षत्रियों को भी कहा कि तुम ब्राह्मण से जरा-सा नीचे हो लेकिन औरों से बड़े हो। बनियों से कहा कि तुम ब्राह्मण और क्षत्रिय से थोड़ा नीचे हो लेकिन द्विज

हो और वेद में तुम्हारा अधिकार है। शूद्र से तुम ऊंचे हो और शूद्र ज्यादा हैं।

शूद्रों में शिल्पियों से कहा कि तुम इन मजदूरों से बड़े हो। इसप्रकार फूट डाला और कहा कि वर्णव्यवस्था भगवान का विधान है और परमात्मा की देन है। इस प्रकार बड़ी मीठी-मीठी बातें कहीं गईं हैं लेकिन यह सब चालाकी है। सोचो भला कि कौन भगवान होगा जो आदमियों को छिन्न-भिन्न करेगा। सब तो उसकी ही संतान हैं फिर अपनी संतान में इतना भेदभाव वह क्यों डालेगा?

मैं कह रहा था कि वैदिकयुग में परिश्रम को श्रेय दिया जाता था। वेद में आता है—"सीरा युंजन्ति कवयो:" "सीर" अर्थात हल। "सीरा" शब्द बहुवचन में है। "कवयो" का अर्थ है कवि जिसका अर्थ होता है कविता बनाने वाला, कविता गाने वाला लेकिन संस्कृत के अनुसार कवि का अर्थ होता है पारदर्शी और विवेक दृष्टिवाला। वैदिक ऋषि कहते हैं कि जो विवेकज्ञान में रत है वह हल चलाता है। यह वेद का मंत्र है। भारत के आजाद होने के पूर्व तक अवध क्षेत्र में तो मैं जानता हूं कि हल की मुठिया भी कोई ब्राह्मण पकड़ ले तो वह शूद्र हो जाये। इसलिए कोई नहीं पकड़ता था। जब भारत आजाद हुआ और मजदूरों का मेहनताना बढ़ा तब ब्राह्मण लोग हल चलाना शुरू किये।

वेद के ऋषि कहते हैं—

कारूरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूवयोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

ऋषि कहते हैं कि मैं कारीगर हूं। मेरा तात (पिता) भिषक् है, वैद्य है। वह दवाई कूटता है। जो नना है, नम्र माता है वह उपलप्रक्षिणी है, भड़भूज है। उपल नाम पत्थर और उपल नाम बालू। यहां का अर्थ है बालू। प्रक्षिणी का अर्थ है फेंकनेवाली। भड़भूज जब भूना भूजता है तो गर्म बालू उसमें फेंक देता है और चला देता है बस लावा हो जाता है। ऋषि कहते हैं कि मेरी नम्र माता भड़भूज है। हम परिवार के लोग धन के लिए नाना कर्म करते हैं।

वेद के ऋषि यह कहते हैं—"कारूरहं" मैं कारीगर हूं। बढ़ई, लोहार, थवई और सोनार आदि को कारीगर कहते हैं। जहां कहीं भी अर्थ लगा लो लेकिन कारु का अर्थ है शिल्पी। जो हाथ से मोटा काम, कला का काम करे वह कारु है, शिल्पी है। हमारे यहां पीछे से यह माना गया कि मोटा काम करने वाला छोटा होता है और उसी से भारतवर्ष में यह भ्रम फैल गया कि मोटा काम करने वाला छोटा होता है और श्रम की बड़ी बेकदरी हो गयी लेकिन श्रम की बड़ी जरूरत है। श्रम करो, सेवापरायण बनो।

श्रम, सेवा, विनय ये गुण कभी छूटने नहीं चाहिए। सेवा के बिना काम न बनेगा लेकिन सेवा के नाम पर आप अपने को निरन्तर प्रवृत्त रखें और एकान्त क्षण न लें, अकेले में न बैठें, स्वाध्याय न करें, साधना न करें तो जीवन अधूरा रहेगा। शांति न मिलेगी। जीवन में फल है गहरी शांति।

पहले हलकी शांति तो आये। उद्वेग घटे, चित्त को थोड़ा विश्राम मिले। फिर करते-करते गहरी शांति भी आयेगी। गहरी शांति जीवन का परम फल है और वह सेवा, स्वाध्याय और साधना के क्रम में चलकर ही सम्भव है। कोई सेवा को छोड़कर विद्वान बन जाये और सबको छोड़कर अकेले में बैठ जाये तो मुक्त हो जायेगा यह उसका भ्रम है। सेवा के द्वारा ही होगा।

कोई सेवा में ही रुक गया तो उसका भी काम न बनेगा। स्वाध्याय और साधना की जरूरत है और सेवा, स्वाध्याय और साधना के द्वारा निश्चित है निरन्तर चित्त शुद्ध होता चला जायेगा।

जीवन की एक प्रक्रिया है कि कुछ होने से कुछ होता है। अचानक कुछ नहीं होता। अगर चित्त बेचैन है तो जरूर उसकी तली में कोई त्रुटि है। चित्त में शांति है तो उसकी तली में कुछ अच्छाई है। इसको परखें, देखें, जीवन सुधारें और अपने मन को पवित्र और शीतल बनायें। आज बस इसी के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑